[2005] 3 उम. नि. प. 10

प्रताप सिंह

बनाम

झारखंड राज्य और एक अन्य

2 फरवरी, 2005

न्यायमूर्ति एन. संतोष हेगड़े, न्यायमूर्ति एस. एन. वरियावा, न्यायमूर्ति बी. पी. सिंह, न्यायमूर्ति एच. के. सेमा और न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा

किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (1986 का 54) – धारा 32, 2(ज), 3, 26 और 18 [सहपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 49, 2(ट), 3, 20 और 12] – किशोर की आपराधिक उत्तरदायित्व की आयु का अवधारण – किसी किशोर की आयु का अवधारण उस तारीख से किया जाएगा जिस तारीख को उसके द्वारा अपराध किया गया न कि उस तारीख से जिसको उसे उस अपराध के संबंध में न्यायालय या सक्षम प्राधिकारी के समक्ष पेश किया गया ।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) – दीर्घ शीर्ष [सहपठित किशोर न्याय अधिनियम, 1986 की उद्देशिका तथा दीर्घ शीर्ष] – अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन – उक्त अधिनियमों का पूर्ण उद्देश्य विधि का उल्लंघन करने वाले, अपचारी और उपेक्षित किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास करने का है अत: इस अधिनियम के हितप्रद विधान होने के कारण इसका निर्वचन विधान के प्रयोजन को पूरा करने के लिए उदारतापूर्वक अर्थात् किशोर के हित में किया जाना चाहिए ।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) – धारा 20, 64, 69, 2(ट) और (ठ) [सहपठित किशोर न्याय अधिनियम, 1986] अधिनियम का लागू होना – 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई और लंबित पड़ी कार्यवाहियों को 2000 के अधिनियम का लागू होना – 2000 के उक्त अधिनियम के उपबंध 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई और 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख तक लंबित पड़ी कार्यवाही के संबंध में उस दशा में लागू होंगे यदि संबंधित व्यक्ति ने 2000 के अधिनियम के प्रवर्तन में आने की तारीख को अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

कानूनों का निर्वचन [सहपठित संविधान, 1950 का भाग 3] – बाह्य सहायता – अंतरराष्ट्रीय संधियां और अभिसमय (कन्वेंशन) – यद्यपि अंतरराष्ट्रीय संधियां और कन्वेशनें राष्ट्रीय (देशीय) विधि का भाग नहीं हैं, तथापि भारत के ऐसी संधियों का पक्षकार होने के कारण उनके प्रति निर्देश करते हुए उनका अनुसरण किया जा सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21 और 114 [सहपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 14, 33, 12 और 7 तथा किशोर न्याय अधिनियम, 1986 की धारा 27, 20, 15, 18 और 8] "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" – शीघ्र अन्वेषण, विचारण तथा कार्यवाहियों का निपटारा और दंडादेश का निष्पादन – अधिकार – मामलों के शीघ्र निपटारे का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और 14 में तथा अंतरराष्ट्रीय संधियों में भी सन्निविष्ट है, अत: किसी किशोर के मामले का शीघ्र निपटारे का अधिकार न केवल उसका कानूनी अधिकार है अपितु सांविधानिक अधिकार भी है ।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 – धारा 70, 68 और 69 –

केन्द्रीय सरकार द्वारा किशोरों के हित में आदर्श नियम विरचित किया जाना – वैधता – अधिनियम के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार कोई नियम बनाने के लिए प्राधिकृत नहीं है, यह शक्ति केवल राज्य को प्रदत्त की गई है, अतः केन्द्रीय सरकार द्वारा विरचित आदर्श नियमों का कोई विधिक बल नहीं है और इन्हें प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है ।

इस मामले में के तथ्यों के अनुसार अपीलार्थी ने, जिसे कि एक षड्यंत्रकारी अभिकथित किया गया था, विष देकर मृतक की मृत्यु कारित की थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर, अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया था और उसे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था । पेश किए जाने पर विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने यह पाया कि अपीलार्थी की आयु लगभग 18 वर्ष की होगी । अपीलार्थी की ओर से यह दावा करते हुए एक अर्जी फाइल की गई थी कि वह घटना की तारीख को अर्थात् अप्राप्तवय (अवयस्क) था, तदुपरि विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उस मामले को किशोर न्यायालय में प्रेषित कर दिया । अपीलार्थी को किशोर न्यायालय में पेश किया गया था । वहां पेश किए जाने पर किशोर न्यायालय ने अपीलार्थी को देखकर यह पाया कि अपीलार्थी की आयु 15 और 16 वर्ष के बीच लगती है और किशोर न्यायालय ने अपीलार्थी की आयु को सिविल सर्जन को वैज्ञानिक परीक्षा करके निर्धारित करने के प्रयोजन के लिए सिविल सर्जन को एक चिकित्सीय बोर्ड का गठन करने का निदेश दिया । ऐसे किसी चिकित्सा बोर्ड का गठन नहीं किया गया । इस प्रकार, विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कहा और विद्यालय छोड़ने संबंधी प्रमाणपत्र तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की अंक-सूची की परीक्षा करने पर पूर्वोक्त प्रमाणपत्र में अपीलार्थी की अभिलिखित जन्म तारीख 18 दिसंबर, 1983 मानते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी की आयु तारीख 31 दिसंबर, 1998 को 16 वर्ष से कम थी । अपीलार्थी को तब जमानत पर छोड़ दिया गया । इससे व्यथित होकर इत्तिलाकर्ता ने प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष एक अपील फाइल की । प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश ने इस न्यायालय द्वारा अरनित दास बनाम बिहार राज्य वाले मामले में दिए गए निर्णय के प्रति निर्देश करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील का निपटारा कर दिया कि किशोर न्यायालय ने इस तथ्य का उल्लेख न करने में गलती की थी कि किशोर न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने की तारीख इस बात का विनिश्चय करने के लिए सुसंगत तारीख थी कि क्या अपीलार्थी विचारण के प्रयोजन के लिए किशोर था अथवा नहीं और अपीलार्थी की आयु का निर्धारण करने के लिए नए सिरे से जांच कराने का निदेश दिया । उससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन का निपटारा करते हुए इस न्यायालय द्वारा अरनित दास वाले (उपर्युक्त) मामले में किए गए विनिश्चय का अनुसरण किया और यह अभिनिर्धारित किया कि (आयु की) गणना किए जाने की तारीख अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने की तारीख होती है न कि अपराध के किए जाने की तारीख । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए 1986 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे न कि 2000 के अधिनियम के उपबंध । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि जन्म की तारीख, जैसी कि विद्यालय और विद्यालय के प्रमाणपत्र में अभिलिखित की गई है, अपीलार्थी की आयु नियत करने के लिए सर्वोत्तम साक्ष्य होना चाहिए । उच्च न्यायालय का मत यह भी था कि आयु के सबूत में कोई अन्य साक्ष्य बहुत ही निम्न क्वालिटी का होगा । चूंकि जांच लंबित है, अतः हमें इस प्रश्न पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इस प्रकार यह मामला हमारे समक्ष आया है। जिन दो प्रश्नों पर प्राधिकृत विनिश्चय किया जाना अपेक्षित है, वे इस प्रकार हैं – (क) क्या अभिकथित अपराधी की, किशोर अपराधी के रूप में, आयु का अवधारण करने के लिए घटना की तारीख गणना किए जाने की तारीख होगी अथवा वह तारीख होगी जिस तारीख को उसे न्यायालय/सक्षम प्राधिकारी के समक्ष पेश किया जाता है; (ख) क्या 2000 का अधिनियम ऐसे मामले में लागू होगा जिसमें कार्यवाही 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई थी और जब 2000 का अधिनियम तारीख 1 अप्रैल, 2001 से प्रवृत्त

हुआ, उस समय लंबित थी । उच्चतम न्यायालय द्वारा तदनुसार अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए गणना किए जाने की तारीख अपराध किए जाने की तारीख होती है न कि वह तारीख जिस तारीख को उसे प्राधिकारी या न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है । यह नहीं कहा जा सकता है कि 1986 के अधिनियम की धारा 32 में प्रयुक्त है शब्द से पता चलता है कि किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए पेश किए जाने की तारीख गणना करने संबंधी तारीख होगी क्योंकि उसकी आयु के बारे में जांच उस तारीख से प्रारंभ होती है जिस तारीख को उसे न्यायालय के समक्ष लाया जाता है न कि अन्यथा । अपचारी किशोर की परिभाषा से यह ऐसा किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह ठहराया गया है कि उसने अपराध किया है । धारा 32 में प्रयुक्त है शब्द ऐसे किशोर के प्रति निर्देश्य है जिसने कथित रूप से घटना की तारीख को अपराध किया है । यह अवेक्षा की जा सकती है कि धारा 18 में भी है शब्द का एक से अधिक स्थानों पर प्रयोग किया गया है । प्राय: किसी अपराधी को ऐसे किसी अपराध के, जो कि अभिकथित रूप से किया गया है, ठीक पश्चात् गिरफ्तार कर लिया जाता है या कई बार घटनास्थल पर ही गिरफ्तार कर लिया जाता है । इससे यह भी दर्शित होता है कि किशोरों की गिरफ्तारी और जमानत पर छोड़े जाने तथा अभिरक्षा के संबंध में किशोर (की आयु) की गणना की तारीख अपराध किए जाने की तारीख होती है न कि उसके पेश किए जाने की तारीख। अधिनियम के क्षेत्रांतर्गत ऐसी स्थिति आती है जो किशोर की अपचारिता को किसी अपराध के किए जाने से जोड़ती है । ऐसी किसी दशा में उसकी पश्च अपचारिता देखभाल की जानी चाहिए और उक्त प्रयोजन के लिए अपचार होने की तारीख सुसंगत तारीख होगी । अत:, यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि किशोर की आयु का अवधारण किए जाने के लिए सुसंगत तारीख वह तारीख होगी जिस तारीख को अपराध किया गया है न कि वह तारीख जिसको उसे न्यायालय में पेश किया जाता है । अत:, न्यायालय को इसमें के अपीलार्थी की आयु का अवधारण न्यायालय द्वारा ऊपरवर्णित इन निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि किशोर की आयु की गणना करने के लिए सुसंगत तारीख घटना के घटित होने की तारीख होगी न कि वह तारीख जिस तारीख को उसे बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार अपराधी की आयु की गणना उस तारीख से की जानी चाहिए, जिस तारीख को अभिकथित अपराध किया गया था । (पैरा 14, 15, 16, 37, 86, 111 और 112)

किशोर न्याय अधिनियम, 1986 का संपूर्ण उद्देश्य उपेक्षित या अपचारी किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास का उपबंध करने का है । यह एक फायदाप्रद विधान है जिसका उद्देश्य उपेक्षित अथवा अपचारी किशोरों को अधिनियम का फायदा उपलब्ध करना है । यह स्थापित विधि है कि फायदाप्रद विधान का निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए जिससे कि विधान का फायदा उन लोगों को मिल सके जिनके लिए वह विधान बनाया गया है और उससे विधान का आशय निष्फल न हो सके । 2000 के अधिनियम की धारा 2 के खंड (ठ) में "विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर" पद को परिभाषित किया गया है अर्थात् "विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर" से ऐसा किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि उसने कोई अपराध कारित किया है । 1986 के अधिनियम में "विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर" पद का न होना । 1986 के अधिनियम और 2000 के अधिनियम की परिभाषाओं के बीच जो उल्लेखनीय विभेद है वह है 1986 के अधिनियम में अपचारी किशोर की परिभाषा, जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है, उस अपराध के प्रति निर्देश्य है जो कथित रूप से उसके द्वारा किया गया है । यह अपराध की वह तारीख है जिसको वह विधि का उल्लंघन करता है । जहां किसी किशोर को सक्षम प्राधिकारी और/अथवा न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है, उसने उस दिन कोई अपराध नहीं किया हुआ होता बल्कि उसे उस अभिकथित अपराध के लिए प्राधिकारी के समक्ष लाया जाता है जिसके लिए उसके बारे में यह पाया गया है कि वह उसने किया है । अधिनियम की उद्देशिका, उसके लक्ष्यों और उद्देश्यों के साथ पठित अधिनियम की धारा 3

और 26 में अंतर्निहित विधायी आशय स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है । अधिनियम की (उक्त) धाराओं, उद्देशिका, लक्ष्यों और उद्देश्यों का एक साथ परिशीलन करने से किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं रह जाता कि विधायिका का आशय उपेक्षित या अपचारी किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास का तथा उसका न्यायनिर्णयन करने का उपबंध करने का है । उक्त अधिनियमों का संपूर्ण उद्देश्य किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास करने का उपबंध करने का है । चूंकि ये अधिनियम फायदाप्रद विधान हैं, अत: इनका निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए जो कि विधान के उद्देश्य को अर्थात् किशोरों को फ़ायदा देने के उद्देश्य को पूरा करे । किशोर न्याय विधान का प्रयोजन उन बालकों को सहायता प्रदान करना है जिन्हें वयस्कों के साथ कारावास में रखा जाता है और उनके साथ विभिन्न प्रकार से दुर्व्यवहार किया जाता है । यह उपयुक्त होगा कि विधान के इसी उद्देश्य और प्रयोजन का विवेचन इस स्पष्ट बोध के साथ किया जाए जिससे कि किशोर अपचारियों को राहत प्राप्त हो सके । मात्र इस कारण कि किसी विवाद की दशा में उसकी आयु का अवधारण अधिनियम की धारा 26 के निबंधनों के अनुसार सक्षम न्यायालय अथवा बोर्ड द्वारा किया जाता है, इससे यह अभिप्रेत नहीं होता कि उसके लिए सुसंगत तारीख वह तारीख होगी जिसको उसे बोर्ड के समक्ष पेश किया जाता है । यदि ऐसी किसी दलील को स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे बेतुका परिणाम सामने आएगा जैसे कि किसी मामले विशेष में पुलिस अधिकारी उसे उसके किशोर न रहने से पूर्व ही बोर्ड के समक्ष पेश न करने के लिए स्वतंत्र होंगे । यदि उसे उसके किशोर न रहने के पश्चात् पेश किया जाता है तो बोर्ड के लिए उसे संरक्षात्मक अभिरक्षा में भेजना या उसे जमानत पर छोड़ना आवश्यक नहीं होगा, जिसका परिणाम यह होगा कि उसे न्यायिक या पुलिस अभिरक्षा में भेजा जाएगा, जिससे वह प्रयोजन निष्फल हो जाएगा जिसके लिए अधिनियम अधिनियमित किया गया था । विधि को किसी अनिश्चित स्थिति में लागू नहीं किया जा सकता । इसके अलावा, अधिनियम के निबंधनों के अनुसार कड़ाईपूर्वक ऋजु विचारण कराए जाने का अधिकार, जिसके अंतर्गत प्रक्रियात्मक रक्षोपाय भी है, किशोर का एक मूल अधिकार है । किशोर के विरुद्ध कार्यवाही अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप होनी चाहिए । 2000 के अधिनियम में हितप्रद परिणामों का उपबंध किया गया है, अत: इसका अर्थान्वयन उदारतापूर्वक ही किए जाने की अपेक्षा की जाती है । उच्चतम न्यायालय को यह प्रतिपादना भी विस्मरण नहीं है कि किसी फायदाप्रद विधान का अर्थान्वयन इतनी उदारतापूर्वक नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि उसके क्षेत्रांतर्गत ऐसा कोई व्यक्ति आ जाए जो कि कानूनी स्कीम के अंतर्गत नहीं आता । (पैरा 10, 12, 19, 23, 48, 79, 92 और 93)

किशोर न्याय अधिनियम, 1986 और किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के बीच स्पष्ट विभेद यह है कि 1986 के अधिनियम के अधीन किशोर से अभिप्रेत है ऐसा पुरुष किशोर जिसने 16 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है और ऐसी महिला किशोर जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है । 2000 के अधिनियम के अधीन पुरुष और महिला किशोर के बीच कोई विभेद नहीं किया गया है । 1986 के अधिनियम के अधीन विहित 16 वर्ष की आयु सीमा को 2000 के अधिनियम में बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया है । 2000 के अधिनियम में जहां कहीं "किशोर" शब्द आया है, वहां उसका अर्थ ऐसे व्यक्ति के बारे में लिया जाएगा जिसने कि 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है । किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 20 लंबित मामलों की बाबत विशेष उपबंध के बारे में है और यह सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है । "इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के न्यायालय में उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां" वाक्य बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण है । किसी न्यायालय में लंबित किशोर विषयक कार्यवाहियां, जिन्हें अधिनियम की धारा 20 में निर्दिष्ट किया गया है, 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व आरंभ की गई कार्यवाहियों से संबंधित हैं और जो 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के समय लंबित पड़ी हुई हैं ।

"किसी....न्यायालय" पद के अंतर्गत साधारण दांडिक न्यायालय भी आते हैं । यदि व्यक्ति 1986 के अधिनियम के अधीन "किशोर" था तो कार्यवाहियां दांडिक न्यायालयों में लंबित नहीं रहेंगी । वे कार्यवाहियां केवल तभी दांडिक न्यायालयों में लंबित रहेंगी यदि लड़के की आयु 16 वर्ष से अधिक और लड़की की आयु 18 वर्ष से अधिक हो गई है । इससे यह दर्शित होता है कि धारा 20 में उन मामलों के प्रति निर्देश किया गया है जहां कोई व्यक्ति 1986 के अधिनियम के अधीन कोई किशोर नहीं रह गया है किन्तु उसने 18 वर्ष की आयु अभी पार नहीं की है तो लंबित मामला उस न्यायालय में उसी प्रकार जारी रहेगा मानो कि 2000 का अधिनियम पारित ही नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह न्यायालय उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और किशोर के बारे में कोई दंडादेश पारित किए जाने के बजाय उस किशोर को बोर्ड के समक्ष पेश करेगा और वह बोर्ड उस किशोर की बाबत आदेश पारित करेगा । इस संबंध में, यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि 2000 के अधिनियम की धारा 16, 1986 के अधिनियम की धारा 22 के समान है । इसी प्रकार 2000 के अधिनियम की धारा 15, 1986 के अधिनियम की धारा 21 के समविषयक है । अतः, ऐसे किसी निर्वचन से भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन नहीं होता और किशोर ऐसी किसी शास्ति से, जो कि 1986 के अधिनियम के अधीन उस पर अधिरोपित की जा सकती हो, अधिक शास्ति का भागी नहीं होता है । 2000 के अधिनियम की धारा 69(1) द्वारा 1986 के अधिनियम को निरसित किया गया था । धारा 69 की उपधारा (2) में यह अनुध्यात है कि 1986 के अधिनियम के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई 2000 के अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी । इस प्रकार, यद्यपि 1986 के अधिनियम का 2000 के अधिनियम द्वारा निरसन कर दिया गया था, तथापि 1986 के अधिनियम के अधीन की गई किसी बात या किसी कार्रवाई को उपधारा (2) द्वारा इस रूप में व्यावृत्त बनाया गया है; मानो कि वह कार्रवाई 2000 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई है । इस प्रकार, जहां कोई जांच आरंभ की जा चुकी है और किशोर कोई किशोर नहीं रहा है, अर्थात् 18 वर्ष की आयु पार कर चुका है, तो उस दशा में भी जांच जारी रखी जानी चाहिए और ऐसे व्यक्ति की बाबत किए गए आदेश उस रूप में होंगे मानो कि ऐसा व्यक्ति किशोर ही बना हुआ है । इसी प्रकार, धारा 64 के अधीन (यह उपबंध है कि) जहां कि कोई किशोर 2000 के अधिनियम के प्रारंभ पर कारावास का दंड भोग रहा है वहां उसे ऐसा दंड भोगने के बजाय किसी विशेष गृह में भेजा जाएगा या किसी समुचित संस्थान में रखा जाएगा । इन उपबंधों से यह दर्शित होता है कि उन मामलों में भी जहां कि मात्र जांच प्रारंभ की गई है अथवा जहां कि किसी किशोर को दंडादिष्ट किया गया है, 2000 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे । अतः 2000 के अधिनियम के उपबंध लंबित मामलों के संबंध में लागू होंगे परन्तु यह तब जबकि तारीख 1 अप्रैल, 2001 को अर्थात् 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख को वह व्यक्ति 2000 के अधिनियम में यथापरिभाषित पद के अर्थांतर्गत "किशोर" है अर्थात् उसकी आयु 18 वर्ष से अधिक नहीं हुई है । 2000 का यह अधिनियम भविष्यलक्षी रूप से प्रवर्तन में आया । तथापि 2000 के अधिनियम द्वारा 1986 के अधिनियम को निरसित कर दिया गया है । इस अधिनियम द्वारा भिन्न-भिन्न लिंग के किशोर के बीच के विभेद को समाप्त कर दिया गया है जिसके कारण पुरुष किशोर भी किशोर होगा यदि उसने 18 वर्ष की आयु पार नहीं की है । 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार, ऐसे व्यक्ति का, जो किशोर नहीं है, किसी भी न्यायालय में विचारण किया जा सकता था । 2000 के अधिनियम की धारा 20 में ऐसी ही एक स्थिति का उल्लेख है जिसमें यह कथन है कि ऐसी स्थिति के होते हुए भी विचारण की कार्यवाही उस न्यायालय में उसी प्रकार जारी रहेगी मानो कि वह अधिनियम पारित ही नहीं किया गया है और उस दशा में यदि उसे कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है तो उस आशय का निष्कर्ष दोषसिद्धि के निर्णय में, यदि कोई हो, अभिलिखित किया जाएगा किन्तु किशोर के संबंध में कोई दंडादेश पारित किए जाने के बजाय उसे बोर्ड के समक्ष पेश किया जाएगा और यदि बोर्ड का जांच किए जाने पर यह समाधान हो जाता है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह अधिनियम के उपबंधों के अनुसार आदेश पारित करेगा । इस प्रकार उक्त

उपबंध में विधिक कल्पना का सृजन किया गया है । किसी विधिक कल्पना को, जैसा कि सुविदित है, पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए भले ही उसकी अपनी परिसीमाएं हैं । इस प्रकार, विधिक कल्पना के कारण किसी व्यक्ति को, भले ही वह किशोर नहीं है, दंडादिष्ट किए जाने के प्रयोजन के लिए बोर्ड द्वारा किशोर ही माना जाना चाहिए, इसमें इस स्थिति का उल्लेख किया गया है कि उस व्यक्ति को, भले ही वह 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार किशोर नहीं है, 2000 के अधिनियम के अधीन उक्त सीमित प्रयोजन के लिए किशोर ही माना जाए । तथापि, जैसाकि 2000 के अधिनियम के उपबंधों से प्रतीत होता है, 2000 के अधिनियम की स्कीम ऐसी है कि उसमें ऐसा अर्थान्वयन संभव है । ऐसा ही धारा 64 से भी, जो कि ऐसे मामले के संबंध में है जहां कि कोई व्यक्ति दंड भोग कर रहा है, प्रकट होता है किन्तु यदि वह 2000 के अधिनियम के अर्थांतर्गत ऐसा किशोर है जिसने 18 वर्ष की आयु पार नहीं की है तो उस अधिनियम के उपबंध इस रूप में लागू होंगे मानो कि उसे बोर्ड द्वारा उसे, यथास्थिति, विशेष गृह या संस्था में भेजे जाने का आदेश दिया गया है । अत: 2000 के अधिनियम की धारा 20 तब लागू होगी जब कोई व्यक्ति तारीख 1 अप्रैल, 2001 को 18 वर्ष से कम आयु का है । अधिनियम की धारा 20 को लागू करने के प्रयोजन के लिए यह अवश्य ही सिद्ध किया जाना चाहिए कि : (i) अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख को वे कार्यवाहियां, जिनमें याची अभियुक्त था, लंबित पड़ी हुई थीं, और (ii) वह उस तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का था । उक्त अधिनियम के प्रयोजन के लिए, ऊपर वर्णित दोनों ही शर्तों को पूरा किए जाने की अपेक्षा की जाती है। 2000 के उक्त अधिनियम के उपबंधों के कारण, किशोर को प्रदान की गई संरक्षा को केवल विस्तारित किया गया है किन्तु ऐसा विस्तार आत्यंतिक नहीं है बल्कि केवल सीमित प्रकृति का है । यह केवल उस दशा में लागू होगा जब धारा 20 या धारा 64 में यथा अंतर्विष्ट तत्संबंधी पूर्व शर्तों को पूरा कर दिया जाता है । उक्त उपबंधों में बार बार 'किशोर' या 'अपचारी किशोर' शब्दों के प्रति विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश किया गया है । अधिनियम का उद्देश्य भी यही प्रतीत होता है और संसद् के सही आशय को अभिनिश्चित करने के लिए प्रयोजनात्मक अर्थान्वयन के नियम को अवश्य ही अपनाया जाना चाहिए । यदि किसी बालक को किसी वयस्क की संगति में बनाए रखा जाता है तो उससे अधिनियम का प्रयोजन निष्फल हो जाएगा । इस प्रकार, 2000 के अधिनियम के आशय केवल उक्त अधिनियम के अर्थान्तर्गत किसी किशोर को संरक्षा प्रदान करने का है न कि किसी वयस्क को संरक्षा प्रदान करने का । दूसरे शब्दों में, भले ही यह अधिनियम ऐसे किसी व्यक्ति को लागू होगा जो अभी भी ऐसा किशोर है जो 18 वर्ष की आयु का नहीं हुआ है किन्तु यह ऐसे किसी व्यक्ति को लागू नहीं होगा जो उसके (अधिनियम के) प्रवृत्त होने की तारीख को 18 वर्ष का हो गया है या जो अपराध के किए जाने की तारीख को 18 वर्ष का नहीं हुआ था किन्तु उसके बाद अब किशोर नहीं रहा है । किसी कानून को भूतलक्षी प्रभाव देने पर रोक का प्रश्न केवल तब उद्भूत होता है जब उसके द्वारा किसी व्यक्ति के निहित अधिकारों को छीना जाना जाता है । अधिनियम की धारा 20 के कारण व्यक्ति के किसी भी निहित अधिकार को छीना नहीं गया है, बल्कि उसके द्वारा किशोर के लिए केवल अतिरिक्त संरक्षा का उपबंध किया गया है । इसके अलावा, 2000 के अधिनियम का ऊपर वर्णित उपबंध उपचारात्मक कानून है । किसी उपचारात्मक कानून को किसी लंबित कार्यवाही में लागू किए जाने का अर्थ यह नहीं है कि उसके द्वारा उसे भूतलक्षी प्रभाव दिया जा रहा है और पूर्व प्रभावी रूप से प्रवर्तन में लाया जा रहा है । आशय यह नहीं है कि इसका कोई और मत संभव नहीं है । किन्तु ऐसे प्रकृति के किसी मामले में जहां कि अंतरराष्ट्रीय संधियों के अनुसरण में या उनके अग्रसरण में तथा उस अनुभव को देखते हुए, जो कि 1986 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् संसद् को प्राप्त हुआ, अतिरिक्त संरक्षा प्रदान की गई हो, इस न्यायालय का यह विचार है कि इसका इस रूप में परिशीलन किया जाना चाहिए कि किशोर को विस्तारित फायदा 2000 के अधिनियम के अधीन भी दिया जा सकता है । इसके अलावा, धारा 69 की उपधारा (2) में यह उपबंध है कि सभी कार्यवाहियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे नए अधिनियम के अधीन ग्रहण की गई हैं । इससे इस तथ्य का भी पता चलता है कि नया अधिनियम, ऊपरवर्णित सीमा तक, उस लंबित

कार्यवाही को लागू होगा जो कि 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई थी । 1986 के अधिनियम के अधीन लंबित मामलों में 2000 का अधिनियम सीमित रूप से लागू होगा । (पैरा 28, 31, 32, 24, 25, 29, 30, 34, 88, 90, 92, 94, 95, 96, 104, 105 और 112)

किशोर न्याय अधिनियम में विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय विधि के प्रति निर्देश किया गया है । नियमों के सुसंगत उपबंध उसमें सम्मिलित किए गए हैं । यद्यपि अंतरराष्ट्रीय संधियां, प्रसंविदाएं और अभिसमय हमारी राष्ट्रीय (देशीय) विधि का भाग नहीं हो सकतीं, तथापि, न्यायालयों द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत उक्त संधियों का एक पक्षकार है, उनके प्रति निर्देश और उनका अनुसरण किया ज़ा सकता है । शीघ्र विचारण का अधिकार कोई नया अधिकार नहीं है । यह हमारे संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के निबंधनानुसार उसमें सन्निविष्ट है । अंतरराष्ट्रीय संधियों में इसे स्वीकार किया गया है । अब यह सामान्य बात है कि मानव अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है । अंतरराष्ट्रीय विधि के कुछ उपबंध, हो सकता है, हमारी देशीय विधि का भाग न हों तथापि न्यायालय उनके प्रति निर्देश करने में संकोच नहीं करते जिससे कि संविधान के संदर्भ में नए अधिकारों का पता लगाया जा सके । भारत के संविधान और अन्य प्रवृत्त कानूनों का परिशीलन निरंतर अंतरराष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुरूप किया जा रहा है । संविधान विधायी शक्ति का स्रोत है न कि उसका कोई प्रयोग । अंतरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांत, जब कभी लागू हों, कानूनी विवक्षा के रूप में प्रवृत्त होते हैं किन्तु विधायिका ने, वर्तमान मामले में, अपने को तदद्वारा आबद्धकर माना है और इस प्रकार उसने सांविधानिक विधि या अंतरराष्ट्रीय विधि की तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 और अनुच्छेद 21 के संदर्भ में उसकी अनदेखी करके विधान (विधि) नहीं बनाया। अतः विधि को अंतरराष्ट्रीय विधि के अनुसार समझा जाना चाहिए । हमारे संविधान के भाग 3 में सारभूत और साथ ही प्रक्रियात्मक अधिकारों की संरक्षा का उपबंध है । उससे जो विवक्षाएं उद्भूत होती हैं उनका न्यायपालिका द्वारा प्रभावी तौर पर संरक्षण किया जाना चाहिए । कानून को सांविधानिक विधि के साथ-साथ उस क्षेत्र में प्रवर्तित अंतरराष्ट्रीय विधि को ध्यान में रखते हुए प्रासंगिक अर्थ दिया जाना चाहिए । भारत के संविधान तथा किशोर न्याय विधान को अनिवार्यतः वर्तमान के परिदृश्य के संदर्भ में और अंतरराष्ट्रीय संधियों तथा अभिसमयों (कन्वेशनों) को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए । हमारे संविधान में विश्व समुदाय की उन संस्थाओं को, जिनका सृजन किया जा चुका है, दृष्टिगत रखा गया है । कुछ विधिक लिखतों को जिनमें मानव अधिकारों तथा मूलभूत मानवीय स्वतंत्रताओं की घोषणा है, अंगीकार किया गया है किन्तु समय के साथ-साथ अनेक देशों में नवीन अधिकार भी सामने आए हैं । मानव मस्तिष्क में मानव अधिकारों की संरक्षा से संबंधित नए विचार घर कर गए हैं । अब, संविधान में न केवल भारत के उन लोगों का, जिन्होंने अपने शासन के लिए इसे बनाया और स्वीकार किया, बल्कि भारतीय राष्ट्र की आधारभूत विधि के रूप में उस अंतरराष्ट्रीय समुदाय का भी वर्णन है क्योंकि भारत उस समुदाय का एक सदस्य है । अनिवार्यतः, इसका अर्थ उस विधिक संदर्भ द्वारा प्रभावित होता है, जिसमें कि यह प्रवर्तित होना चाहिए । वे विधिक विलेखें, जिनमें विधिक अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं की घोषणा की गई है, जो मानवीय गरिमा वाली धारणाओं में तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर (चार्टर आफ यूनाइटेड नेशन्स) में पाई जाती हैं, उनके बारे में पहले कुछ भी ज्ञात नहीं था और जो आज प्रत्यक्ष दिखाई देता है । [संयुक्त राष्ट्र चार्टर, जिस पर 26 जून, 1945 को हस्ताक्षर किए गए थे, उद्देशिका] । राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास संविधान के अर्थ पर प्रकाश डाल सकता है । (पैरा 64, 66, 67 और 68)

दंड संबंधी किसी कानून का अर्थान्वयन करने में, विधि के उद्देश्य को स्पष्टतया ध्यान में रखना चाहिए। किसी किशोर द्वारा अभिकथित रूप से किए गए किसी अपराध के संबंध में समयबद्ध अन्वेषण और विचारण का महत्व सुस्पष्ट है । अन्वेषण करते समय यह प्रत्याशा की जाती है कि अभियुक्त को तुरंत गिरफ्तार किया जाए । उसको गिरफ्तार किए जाने पर यदि वह किशोर प्रतीत होता है तो उसे पुलिस अभिरक्षा में नहीं रखा जाए और उसे जमानत पर छोड़ा जाए । यदि उसे गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी द्वारा जमानत पर छोड़ा नहीं

जाता है तो उसे सक्षम न्यायालय अथवा बोर्ड के समक्ष पेश किया जाना चाहिए । जब एक बार यह प्रतीत हो जाता है कि वह किशोर है तो सक्षम न्यायालय और/अथवा बोर्ड उसे जमानत पर छोड़े जाने अथवा उसे संरक्षात्मक अभिरक्षा में भेजे जाने का समुचित आदेश पारित कर सकेगा । यदि पेश किए गए व्यक्ति के बारे में यह स्वीकृत है कि वह किशोर है तो किशोर की आयु के अवधारण के प्रयोजन के लिए जांच का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं होती । जांच केवल उस दशा में आवश्यक होगी यदि उस निमित्त कोई विवाद उठाया जाए । अतः, सक्षम न्यायालय और/या बोर्ड द्वारा विनिश्चय अभियुक्त की इस प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि क्या उसे जमानत पर छोड़ा जाए या किसी संरक्षात्मक अभिरक्षा में भेजा जाए अथवा पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जाए । उक्त प्रयोजन के लिए, जो आवश्यक है वह है इस बात का पता लगाना कि क्या अपराध किए जाने की तारीख को वह किशोर था अथवा नहीं क्योंकि अन्यथा वह प्रयोजन, जिसके लिए अधिनियम अधिनियमित किया गया था, निष्फल हो जाएगा । उक्त अधिनियम के उपबंधों में, जैसाकि इसमें इसके पूर्व उपदर्शित किया गया है, स्पष्ट रूप से यह अनुध्यात है कि कार्यवाहियों में आवश्यक कदम न केवल आरंभिक प्रक्रम पर किसी विशेष कार्यवाही को अंगीकार करने के प्रयोजन के लिए उठाए जाने की अपेक्षा होती है बल्कि कार्यवाहियों के मध्यवर्ती और अंतिम प्रक्रम पर भी उठाए जाने की अपेक्षा होती है । यदि संबंधित व्यक्ति किशोर है, तो उसका वयस्क अभियुक्त के साथ विचारण नहीं किया जा सकता । उसका विचारण बोर्ड द्वारा पृथक् रूप से किया जाना चाहिए । नियमों के नियम 20.1 को ध्यान में रखते हुए उसके मामले का अवधारण बिना किसी अनावश्यक विलंब के किए जाने की अपेक्षा होती है । विचारण में, किशोर की एकांतता से संबंधित उसके अधिकार की अवश्य ही संरक्षा की जानी चाहिए । वह किसी विधिक सलाहकार द्वारा उसका प्रतिनिधित्व किए जाने का तथा निःशुल्क विधिक सहायता पाने का, यदि वह उसके लिए आवेदन करता है, हकदार है । उसके माता-पिता और/या संरक्षक भी कार्यवाहियों में भाग लेने के हकदार हैं । न्यायालय सामाजिक जांच रिपोर्टों पर, जिसमें उस पृष्ठभूमि और परिस्थितियों की जिसमें कि किशोर रह रहा था और उस स्थिति की, जिसमें अपराध किया गया था, समुचित रूप से जांच की जा सकती है जिससे कि किशोर को समुचित प्राधिकारी द्वारा मामले का न्यायनिर्णयन कराए जाने के लिए सुकर बनाया जा सके । सभी प्रक्रमों पर, न्यायालय/बोर्ड से यथाशीघ्र समुचित आदेश पारित किए जाने की अपेक्षा की जाती है । किशोर का अपने मामले का शीघ्रतापूर्वक निपटारा कराने का अधिकार कानूनी अधिकार होने के साथ-साथ सांविधानिक अधिकार भी है। भारत में (मामलों का) शीघ्र निपटारा किए जाने का ऐसा अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में अंतर्विष्ट है, जिनकी सुसंगतता को अधिनियम के निर्वचन के प्रयोजन के लिए कम नहीं किया जा सकता । (पैरा 78 और 100)

यह न्यायालय इस बात से सहमत नहीं है कि आदर्श नियम अधिनियम के निबंधनों के अनुसार विरचित किए गए हैं जिससे कि उन सिद्धांतों को लागू किया जा सके कि विधिमान्य रूप से विरचित नियमों को अधिनियम के भागरूप माना जाना चाहिए । यह एक बात है कि विधिमान्य रूप से विरचित नियमों को अधिनियम के भागरूप माना जाना चाहिए जैसाकि मुख्य वन संरक्षक (वन्य जीव) और अन्य बनाम निसार खान तथा नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है किन्तु उक्त सिद्धांत इस मामले के संबंध में लागू नहीं होता क्योंकि उक्त अधिनियम के निबंधनों के अनुसार केन्द्रीय सरकार को कोई नियम बनाने का प्राधिकार प्राप्त नहीं है । केन्द्रीय सरकार नियम बनाने की शक्ति न होने की दशा में कठिनाई दूर करने की शक्ति के बहुप्रयोजन खंड के प्रति निर्देश नहीं कर सकती क्योंकि इस बात का कोई कथन नहीं किया गया है कि यदि अधिनियम के उपबंध को प्रभावी रूप देने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो किसी प्रकार के आदर्श नियम बनाना अनुज्ञेय होगा । केन्द्रीय सरकार एक कानून कृत्यकारी है । इसके कृत्य केवल अधिनियम की धारा 70 द्वारा सीमाबद्ध हैं । इसे कोई नियम बनाने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया है । नियम बनाने की ऐसी शक्ति केवल राज्य को सौंपी गई है । इस प्रकार, केन्द्रीय सरकार की इस मामले में कोई भूमिका नहीं है और न ही वह 'कठिनाइयों को दूर करने' की

अपनी शक्ति का अवलंब लेकर ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकती है । नियम बनाने की शक्ति एक पृथक् शक्ति है जिसका कि कठिनाई को दूर करने की शक्ति से कोई सरोकार नहीं है । कठिनाई अथवा संदेह को दूर करने की शक्ति के कारण, केन्द्रीय सरकार को कोई विधायी शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है । हालांकि संदेह या कठिनाई को दूर करने की शक्ति एक कानूनी शक्ति है किन्तु यह विधायी शक्ति के सदृश नहीं है, अत: उसके द्वारा अधिनियम के उपबंधों में परिवर्तन (फेरफार) नहीं किया जा सकता । अत:, अपचारी किशोर की आयु का अवधारण आदर्श नियम 62 के अनुसार नहीं किया जा सकता । किसी विवाद्यक का अवधारण करने में अन्य दस्तावेजों की अपेक्षा कतिपय दस्तावेजों पर विचार करना न्यायालय के लिए आज्ञापक बनाने संबंधी किसी विधि का उपबंध केवल विधि द्वारा ही किया जाना चाहिए । भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 को ध्यान में रखते हुए ऐसे किसी प्रश्न का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य का मूल्यांकन करने की न्यायालय की शक्ति को केवल विधिमान्य रूप से बनाई गई किसी विधि द्वारा ही छीना जा सकता है । केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यपालिक शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसा नहीं किया जा सकता । अत: केन्द्रीय सरकार द्वारा विरचित आदर्श नियमों को, जिनका कोई विधिक बल नहीं है, प्रभावी रूप नहीं दिया जा सकता। (पैरा 107, 108 और 112)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 8 एस. सी. सी. 1 = (2004) 8 जजमेंट टुडे एस. सी. 589 : **जिले सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	101
[2004]	(2004) 5 एस. सी. सी. 721 = (2004) सप्ली. 1 जजमेंट टुडे एस. सी. 37 : **दयाल सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	102
[2004]	(2004) 5 एस. सी. सी. 385 : **दीपल गिरीशभाई सोनी और अन्य** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बड़ौदा** ;	93
[2004]	(2004) 4 एस. सी. सी. 714 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **जोहरी मल** ;	108
[2004]	(2004) 4 आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 1 : **आर. (अटले के आवेदन पर)** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार दि होम डिपार्टमेंट** ;	101
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 609 : **बशीर** उर्फ **एन. पी. बशीर** बनाम **केरल राज्य** ;	98
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 48 = (2003) 9 स्केल 720 : **आई. टी. डब्ल्यू. साइनोड इंडिया लिमिटेड** बनाम **कलक्टर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क** ;	90
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 1 : **अशोक लेलैंड लिमिटेड** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य** ;	90
[2004]	(2004) 2 एस. सी. सी. 657 : **आंध्रा बैंक** बनाम **बी. सत्यनारायण और अन्य** ;	81
[2004]	(2004) 2 एस. सी. सी. 510 : **भारत संघ** बनाम **नवीन जिंदल** ;	108

[2003]	(2003) 7 एस. सी. सी. 589 : **इंडियन हैंडिक्राफ्ट्स एम्पोरियम और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	81
[2003]	(2003) 2 एस. सी. सी. 111 : **भावनगर विश्वविद्यालय** बनाम **पालितना शुगर मिल (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य** ;	90
[2001]	(2001) 2 ए. सी. 532 : **रेगिन (डेली)** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार दि होम डिपार्टमेंट** ;	65
[1989]	(1989) 3 एस. सी. सी. 709 : **तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड** बनाम **असम राज्य और अन्य** ;	81
[1967]	[1967] 1 एस. सी. आर. 15 : **मैसर्स जालान ट्रेडिंग कंपनी (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **मिल मजदूर सभा** ;	107
[1964]	[1964] 7 एस. सी. आर. 676 : **रत्तन लाल** बनाम **पंजाब राज्य** ।	97

अनुमोदित निर्णय

[1978]	ए. आई. आर. 1978 कलकत्ता 529 : **दिलीप साहा** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ।	80

अभिपुष्ट निर्णय

[1983]	[1983] 1 उम. नि. प. 603 = (1982) 2 एस. सी. सी. 202 : **उमेश चन्द्र** बनाम **राजस्थान राज्य** ।	6, 8, 19, 20, 24, 74, 75

उलट दिया गया निर्णय

[2000]	(2000) 5 एस. सी. सी. 488 : **अरनित दास** बनाम **बिहार राज्य** ।	4, 6, 8, 20, 74, 75, 76

प्रभेदित निर्णय

[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 297 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** ;	107
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 595 : **मुख्य वन संरक्षक (वन्य जीव) और अन्य** बनाम **निसार खान** ।	107

निर्दिष्ट निर्णय

[2005]	(2005) 3 एस. सी. सी. 592 : **उपेन्द्र कुमार** बनाम **बिहार राज्य** ;	35
[2005]	(2005) 2 एस. सी. सी. 638 : **मैसर्स मारुति उद्योग लिमिटेड** बनाम **राम लाल** ;	91
[2004]	(2004) 72 यू. एस. एल. डब्ल्यू. 4607 : **हमदी** बनाम **रम्सफेल्ड** ;	66

[2004]	(2004) 72 यू. एस. एल. डब्ल्यू. 4596 : **रस्सेल** बनाम **बुश** ;	66
[2004]	(2004) 72 यू. एस. एल. डब्ल्यू. 4584 : **रम्सफेल्ड** बनाम **पेडिला** ;	66
[2004]	(2004) 9 एस. सी. सी. 512 : **लिवरपूल एंड लंदन एस. पी. एंड आई. एसोसिएशन लिमिटेड** बनाम **एम. वी. सी. सक्सेस आई. एंड अनदर** ;	64
[2004]	(2004) 2 ए. सी. 72 (एच. एल.) : **अटर्नी जनरल का निर्देश मामला** ;	99
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 673 : **सुशील कुमार** बनाम **राकेश कुमार** ;	110
[2003]	(2003) 539 यू. एस. 558 : **लारेंस** बनाम **टैक्सास** ;	66
[2002]	(2002) 536 यू. एस. 304 : **एटकिन्स** बनाम **विर्जिनिया** ;	66
[1997]	(1997) 8 एस. सी. सी. 720 : **भोला भगत** बनाम **बिहार राज्य** ;	35
[1995]	(1995) 3 एस. ए. 391 : **एस.** बनाम **मैक्वानएन** ;	66
[1995]	(1995) सप्ली. 4 एस. सी. सी. 419 : **प्रदीप कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	35
[1994]	(1994) 2 ए. सी. 1 : **प्रार** बनाम **अटर्नी जनरल फार जमैका** ;	66
[1994]	(1994) 2 एन. जैड. एल. आर. 257 : **टविटा** बनाम **मिनिस्टर आफ इमिग्रेशन** ;	66
[1993]	(1993) 849 पी. 2डी. 1330 : **अल्फ्रेडो** बनाम **सुपीरियर कोर्ट** ;	71
[1989]	(1989) 3 एस. सी. सी. 1 : **भूप राय** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	35
[1989]	[1989] 1 उम. नि. प. 943 = ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1796 : **बिरदमल सिंघवी** बनाम **आनंद पुरोहित** ;	109, 110
[1987]	[1987] 1 एस. सी. आर. 313 (कनाडा) : **पब्लिक सर्विस एम्पलाई रिलेशन्स ऐक्ट (अलब्रेटा) वाले मामले में निर्देश** ;	66
[1987]	1987 बी. वर्फ जी. ई. 74 : **प्रिजम्पशन आफ इनोसेंस एंड दि यूरोपियन कन्वेंशन आन ह्यूमन राइट्स** ;	66

[1984]	(1984) सप्ली. एस. सी. सी. 228 : **गोपी नाथ घोष** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य ;**	35
	707 एस. डब्ल्यू. 2 डी. 47 : **रोबिन्सन** बनाम **टैक्सास** ;	72
	392 एन. ई. 2 डी. 417 : **इलिनोइस** बनाम **स्टफलबीन ;**	73
	70 एन. वाई. 2 डी. 408 : **फैंक सी वाला मामला** ।	70

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 210.

2001 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 98 में रांची स्थित झारखंड उच्च न्यायालय के तारीख 10 सितंबर, 2001 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री अमरेन्द्र शरण, अपर महासालिसिटर, पी. एस. मिश्र, वरिष्ठ अधिवक्ता, आलोक कुमार, मनु शंकर मिश्र, तथागत हर्ष वर्धन, शिशिर पिनाकी, अमितेश चंद्र मिश्र, उपेन्द्र मिश्र, ध्रुव झा, हिमांशु शेखर, अंशुल, कृष्णनंद पांडेया, देवाशीष भरूका, (सुश्री) सुधा गुप्ता, (सुश्री) महारूख अदेनवाला, त्रिदीप पायस और निखिल नय्यर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एच. के. सेमा ने दिया ।

न्या. सेमा – इज़ाजत दी जाती है ।

2. यह अपील रांची स्थित झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा 2001 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 98 में पारित किए गए तारीख 10 सितंबर, 2001 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

3. संक्षेप में, वे तथ्य, जिनके कारण वर्तमान अपील फाइल की गई है, निम्न प्रकार हैं :–

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जो कि पुलिस थाना मामला सं. 1/99, तारीख 1 जनवरी, 1999 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई थी, बोकारो शहर में पुलिस के समक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 364क, 302/201 के अधीन वर्णित अपराध के संबंध में फाइल की गई थी, जो कि इस आशय की थी कि तारीख 31 दिसंबर, 1998 को अपीलार्थी ने, जिसे कि एक षड्यंत्रकारी अभिकथित किया गया था, विष देकर मृतक की मृत्यु कारित की थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर, अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया था और उसे तारीख 22 नवंबर, 1999 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, चास के समक्ष पेश किया गया था । पेश किए जाने पर विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने यह पाया कि अपीलार्थी की आयु लगभग 18 वर्ष की होगी । तारीख 28 फरवरी, 2000 को अपीलार्थी की ओर से यह दावा करते हुए एक अर्जी फाइल की गई थी कि वह घटना की तारीख को अर्थात् 31 दिसंबर, 1998 को अप्राप्तवय (अवयस्क) था, तदुपरि विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उस मामले को किशोर न्यायालय में प्रेषित कर दिया । अपीलार्थी को तारीख 3 मार्च, 2000 को किशोर न्यायालय में पेश किया गया था । वहां पेश किए जाने पर किशोर न्यायालय ने अपीलार्थी को देखकर यह पाया कि अपीलार्थी की आयु 15 और 16 वर्ष के बीच लगती है और किशोर न्यायालय ने अपीलार्थी की आयु को सिविल सर्जन को वैज्ञानिक परीक्षा करके निर्धारित करने के प्रयोजन के लिए सिविल सर्जन को

एक चिकित्सीय बोर्ड का गठन करने का निदेश दिया । ऐसे किसी चिकित्सा बोर्ड का गठन नहीं किया गया । इस प्रकार, विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कहा और विद्यालय छोड़ने संबंधी प्रमाणपत्र तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की अंक-सूची की परीक्षा करने पर पूर्वोक्त प्रमाणपत्र में अपीलार्थी की अभिलिखित जन्म तारीख 18 दिसंबर, 1983 मानते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी की आयु तारीख 31 दिसंबर, 1998 को 16 वर्ष से कम थी । अपीलार्थी को तब जमानत पर छोड़ दिया गया ।

4. इससे व्यथित होकर इत्तिलाकर्ता ने प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष एक अपील फाइल की । प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश ने इस न्यायालय द्वारा **अरनित दास** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के प्रति निर्देश करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित करते हुए तारीख 19 फरवरी, 2001 को अपील का निपटारा कर दिया कि किशोर न्यायालय ने इस तथ्य का उल्लेख न करने में गलती की थी कि किशोर न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने की तारीख इस बात का विनिश्चय करने के लिए सुसंगत तारीख थी कि क्या अपीलार्थी विचारण के प्रयोजन के लिए किशोर था अथवा नहीं और अपीलार्थी की आयु का निर्धारण करने के लिए नए सिरे से जांच कराने का निदेश दिया । उससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन का निपटारा करते हुए इस न्यायालय द्वारा **अरनित दास** (उपर्युक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अनुसरण किया और यह अभिनिर्धारित किया कि (आयु की) गणना किए जाने की तारीख अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने की तारीख होती है न कि अपराध के किए जाने की तारीख ।

5. उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए 1986 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे न कि 2000 के अधिनियम के उपबंध । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि जन्म की तारीख, जैसी कि विद्यालय और विद्यालय के प्रमाणपत्र में अभिलिखित की गई है, अपीलार्थी की आयु नियत करने के लिए सर्वोत्तम साक्ष्य होना चाहिए । उच्च न्यायालय का मत यह भी था कि आयु के सबूत में कोई अन्य साक्ष्य बहुत ही निम्न क्वालिटी का होगा । चूंकि जांच लंबित है, अत: हमें इस प्रश्न पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

6. **अरनित दास** बनाम **बिहार राज्य** (उपर्युक्त) और **उमेश चन्द्र** बनाम **राजस्थान राज्य**[2] वाले मामलों में व्यक्त परस्पर विरोधी मतों को देखते हुए यह मामला तारीख 7 फरवरी, 2003 के आदेश द्वारा संविधान पीठ को निर्दिष्ट किया गया है । उक्त आदेश इस प्रकार है :–

> "उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय में अरनित दास **बनाम** बिहार राज्य [(2000) 5 एस. सी. सी. 488] वाले मामले में इस न्यायालय की दो सदस्यों की न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है । याची की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अरनित दास (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उमेश चन्द्र **बनाम** राजस्थान राज्य [(1983) 1 उम. नि. प. 603 = (1982) 2 एस. सी. सी. 202] वाले मामले में किए गए विनिश्चय पर विचार नहीं किया गया था । जो प्रश्न इसमें उद्भूत हुआ है वह बार-बार उद्भूत होता रहता है और इस मामले में अपनाए गए विधि के मत का नए अधिनियम अर्थात् किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 पर भी प्रभाव पड़ने की संभावना है और इस मामले की इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा सुनवाई की जानी वांछनीय है । अत: इस मामले को निदेशार्थ भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाए ।"

---

[1] (2000) 5 एस. सी. सी. 488.

[2] [1983] 1 उम. नि. प. 603 = (1982) 2 एस. सी. सी. 202.

इस प्रकार यह मामला हमारे समक्ष आया है ।

7. जिन दो प्रश्नों पर प्राधिकृत विनिश्चय किया जाना अपेक्षित है, वे इस प्रकार हैं :–

(क) क्या अभिकथित अपराधी की, किशोर अपराधी के रूप में, आयु का अवधारण करने के लिए घटना की तारीख गणना किए जाने की तारीख होगी अथवा वह तारीख होगी जिस तारीख को उसे न्यायालय/सक्षम प्राधिकारी के समक्ष पेश किया जाता है ?

(ख) क्या 2000 का अधिनियम ऐसे मामले में लागू होगा जिसमें कार्यवाही 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई थी और जब 2000 का अधिनियम तारीख 1 अप्रैल, 2001 से प्रवृत्त हुआ, उस समय लंबित थी ?

प्रश्न (क) :

क्या अभिकथित अपराधी की, किशोर अपराधी के रूप में, आयु का अवधारण करने के लिए घटना की तारीख गणना किए जाने की तारीख होगी अथवा वह तारीख होगी जिस तारीख को उसे न्यायालय सक्षम प्राधिकारी के समक्ष पेश किया जाता है ।

8. श्री मिश्र ने यह दलील दी कि **उमेश चन्द्र** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय में, जो कि इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया गया है, सही विधि अधिकथित की गई है और **अरनित दास** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें सही विधि अधिकथित की गई है । श्री मिश्र ने यह भी दलील दी कि **अरनित दास** (उपर्युक्त) वाले मामले में **उमेश चन्द्र** वाले (उपर्युक्त) मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय की अवेक्षा की गई है । श्री मिश्र ने किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1986 का अधिनियम कहा गया है) के लक्ष्यों और उद्देश्यों के प्रति भी निर्देश किया और यह दलील दी कि इसका संपूर्ण उद्देश्य किशोर को ऐसे अपराध के संबंध में, जो अभिकथित रूप से उसने किया है, सुधारना और उसका पुनर्वास करना है और यदि अपराध किए जाने की तारीख को किशोर की आयु की गणना करने में नहीं लिया जाता है तो उससे स्वयं अधिनियम का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा । इस संबंध में, उसने अधिनियम की धारा 18, 20, 26 और 32 के प्रति निर्देश किया । इसके विपरीत श्री शरण ने अधिनियम के लक्ष्यों और उद्देश्यों के प्रति तथा अधिनियम की विभिन्न धाराओं के प्रति निर्देश किया और विशिष्ट रूप से अधिनियम की धारा 32 में प्रयुक्त 'है' शब्द पर बल दिया और यह दलील दी कि इन उपबंधों और साथ ही अधिनियम की स्कीम का एक साथ परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए गणना करने की तारीख तब प्रवृत्त होगी जब कोई किशोर प्राधिकारी/न्यायालय के समक्ष पेश होता है या लाया जाता है न कि अपराध किए जाने की तारीख ।

9. इस प्रक्रम पर 1986 के अधिनियम की उद्देशिका तथा उद्देश्यों की अवेक्षा करना उचित होगा :–

"उपेक्षित या अपचारी किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास का तथा अपचारी किशोरों से संबंधित विषयों के न्यायनिर्णयन का और उनके आवासादेश का उपबंध करने के लिए अधिनियम ।

भारत गणराज्य के पैतीसवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

प्राक्कथन संबंधी टिप्पण – उद्देश्यों और कारणों का कथन – विद्यमान बालक अधिनियम के कार्यकरण को ध्यान में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि ऐसे बालकों पर और अधिक ध्यान दिए जाने की अपेक्षा है जो सामाजिक कुसंतुलन, अपचार या उपेक्षा की स्थिति में पाए जाते हैं । वयस्कों के लिए उपलभ्य न्याय व्यवस्था किशोरों पर लागू किए जाने के लिए उपयुक्त नहीं

समझी जाती है । यह भी आवश्यक है कि संपूर्ण देश में तत्समान किशोर न्याय पद्धति उपलब्ध होनी चाहिए जिसमें देश में बदलते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति के सभी पहलुओं के बारे में कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त उपबंध किए जाने चाहिएं । ऐसे किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास में अनौपचारिक पद्धति और समुदाय आधारी कल्याण अभिकरणों के सक्रिय रूप से भाग लेने की भी आवश्यकता है ।

2. इस संदर्भ में प्रस्तावित विधान का लक्ष्य निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करना है :–

(i) देश में किशोर न्याय के लिए एक समान विधिक ढांचा गठित करना, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी बालक किसी भी परिस्थिति में जेल या पुलिस बंदीगृह में नहीं रखा जाए । किशोर कल्याण बोर्ड और किशोर न्यायालयों की स्थापना द्वारा इसे सुनिश्चित किया जा रहा है ;

(ii) सामाजिक कुसंतुलन की किसी स्थिति में पाए गए बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पूर्ण विस्तार में किशोर अपचार के निवारण और उपचार के लिए विशेष उपागम का उपबंध करना ;

(iii) किशोर न्याय पद्धति की परिधि के भीतर आने वाले बालकों के विभिन्न प्रवर्गों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास के लिए अपेक्षित मशीनरी और अवसंरचना को स्पष्ट करना । उपेक्षित किशोरों के लिए पर्यवेक्षण गृहों, किशोरगृहों की और अपचारी किशोरों के लिए विशेष गृहों की स्थापना द्वारा इसे प्राप्त करने का प्रस्ताव है ;

(iv) अन्वेषण और अभियोजन, न्यायनिर्णयन और निपटारे तथा देखरेख; उपचार और पुनर्वास के संबंध में किशोर न्याय के प्रशासन के लिए प्रतिमान और मानदंड स्थापित करना ;

(v) किशोर न्याय की प्रारूपिक पद्धति तथा उपेक्षित या सामाजिक रूप से कुसंतुलित बालकों के कल्याण के लिए स्थापित स्वैच्छिक अभिकरणों के बीच समुचित संबंध और सहकार का विकास करना और उनके उत्तरदायित्वों और भूमिकाओं के क्षेत्र को विनिर्दिष्ट रूप में परिभाषित करना ;

(vi) किशोरों के संबंध में विशेष अपराधों का गठन करना और उनके लिए दंड का उपबंध करना ;

(vii) किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ मानक न्यूनतम नियमों के अनुरूप देश में किशोर न्याय पद्धति को प्रवृत्त करना ।

3. इसके विभिन्न उपबंध देश के भिन्न-भिन्न भागों में प्रवृत्त होंगे, अतः वे इस विषय पर तत्स्थानी विधियों जैसे कि बालक अधिनियम, 1960 और इस विषय पर अन्य राज्य अधिनियमितियों को प्रतिस्थापित करेंगे । विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए है ।"

10. इस प्रकार, अधिनियम का संपूर्ण उद्देश्य उपेक्षित या अपचारी किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास का उपबंध करने का है । यह एक फायदाप्रद विधान है जिसका उद्देश्य उपेक्षित अथवा अपचारी किशोरों को अधिनियम का फायदा उपलब्ध करना है । यह स्थापित विधि है कि फायदाप्रद विधान का निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए जिससे कि विधान का फायदा उन लोगों को मिल सके जिनके लिए वह विधान बनाया गया है और उससे विधान का आशय निष्फल न हो सके ।

11. इस प्रक्रम पर अपचारी किशोर की परिभाषा की अवेक्षा भी करना भी उपयोगी होगा । 1986 के अधिनियम की धारा 2 के खंड (ङ) में अपचारी किशोर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :–

"2(ङ) 'अपचारी किशोर' से ऐसा किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह ठहराया गया है कि उसने अपराध किया है ।"

12. 2000 के अधिनियम की धारा 2 के खंड (ठ) में "विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर" पद को परिभाषित किया गया है अर्थात् "विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर" से ऐसा किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि उसने कोई अपराध कारित किया है । 1986 के अधिनियम और 2000 के अधिनियम की परिभाषाओं के बीच जो उल्लेखनीय विभेद है वह है 1986 के अधिनियम में "विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर" पद का न होना । 1986 के अधिनियम में अपचारी किशोर की परिभाषा, जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है, उस अपराध के प्रति निर्देश्य है जो कथित रूप से उसके द्वारा किया गया है । यह अपराध की वह तारीख है जिसको वह विधि का उल्लंघन करता है । जहां किसी किशोर को सक्षम प्राधिकारी और/अथवा न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है, उसने उस दिन कोई अपराध नहीं किया हुआ होता बल्कि उसे उस अभिकथित अपराध के लिए प्राधिकारी के समक्ष लाया जाता है जिसके लिए उसके बारे में यह पाया गया है कि वह उसने किया है । अतः हमारी राय में, 1986 के अधिनियम में जो अस्पष्ट था वह 2000 के अधिनियम में स्पष्ट कर दिया गया है ।

13. 1986 के अधिनियम की धारा 32 आयु की उपधारणा और अवधारण के बारे में है । धारा 32 इस प्रकार है :–

"32. **आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण** – (1) जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन उसके समक्ष (साक्ष्य देने के प्रयोजनार्थ से अन्यथा) लाया गया व्यक्ति किशोर है वहां सक्षम प्राधिकारी उस व्यक्ति की आयु के बारे में सम्यक् जांच करेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसा साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हो और उस व्यक्ति की आयु यथाशक्य निकटतम रूप से कथित करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि वह व्यक्ति किशोर है या नहीं ।

(2) सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि तत्पश्चात् यह साबित हुआ है कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में उसके द्वारा आदेश किया गया, किशोर नहीं है और इस प्रकार उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित आयु इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी ।"

14. श्री शरण ने इस धारा में दो स्थानों पर प्रयुक्त है शब्द पर बहुत अधिक बल दिया और यह दलील दी कि है शब्द से पता चलता है कि किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए पेश किए जाने की तारीख गणना करने संबंधी तारीख होगी क्योंकि उसकी आयु के बारे में जांच उस तारीख से प्रारंभ होती है जिस तारीख को उसे न्यायालय के समक्ष लाया जाता है न कि अन्यथा । हम इस दलील को मानने में असमर्थ हैं । हम यह पहले ही अवेक्षा कर चुके हैं कि अपचारी किशोर की परिभाषा से यह ऐसा किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह ठहराया गया है कि उसने अपराध किया है । धारा 32 में प्रयुक्त है शब्द ऐसे किशोर के प्रति निर्देश्य है जिसने कथित रूप से घटना की तारीख को अपराध किया है । यहां 1986 के अधिनियम की धारा 18 के उपबंधों के प्रति अवेक्षा करना भी उचित होगा । धारा 18 में किशोरों की जमानत और अभिरक्षा के संबंध में उपबंध किया गया है । धारा 18 इस प्रकार है :–

"18. **किशोरों की जमानत और अभिरक्षा** – (1) जब कोई ऐसा व्यक्ति, भी जमानतीय या अजमानतीय अपराध का अभियुक्त है और दृश्यमान रूप में किशोर है, गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है अथवा किशोर न्यायालय के समक्ष उपसंजात होता है या लाया जाता है तब दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी उस व्यक्ति

को प्रतिभू सहित या रहित जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, किंतु इस प्रकार उसे तब नहीं छोड़ा जाएगा जब यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि उसके ऐसे छोड़े जाने से यह संभाव्य है कि उसका संग किसी ज्ञात अपराधी से होगा या वह नैतिक खतरे के लिए उच्छन्न होगा या उसके छोड़े जाने से न्याय के उद्देश्य विफल होंगे ।

(2) जब गिरफ्तार किए जाने पर ऐसे व्यक्ति को पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा उपधारा (1) के अधीन जमानत पर नहीं छोड़ा जाता है तब ऐसा अधिकारी उसे विहित रीति से संप्रेक्षण गृह या किसी सुरक्षित स्थान में (किंतु किसी पुलिस थाने या जेल में नही) तब तक के लिए रखवाएगा जब तक उस किशोर को न्यायालय के समक्ष न लाया जा सके ।

(3) जब ऐसा व्यक्ति किशोर-न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन जमानत पर नहीं छोड़ा जाता है तब वह जेल के सुपुर्द करने के बजाय उसके बारे में जांच के लंबित रहने के दौरान ऐसी कालावधि के लिए जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उसे संप्रेक्षण गृह या किसी सुरक्षित स्थान में भेजने के लिए आदेश करेगा ।"

15. यह अवेक्षा की जा सकती है कि इस धारा में भी है शब्द का एक से अधिक स्थानों पर प्रयोग किया गया है । प्राय: किसी अपराधी को ऐसे किसी अपराध के, जो कि अभिकथित रूप से किया गया है, ठीक पश्चात् गिरफ्तार कर लिया जाता है या कई बार घटनास्थल पर ही गिरफ्तार कर लिया जाता है ।

16. इससे यह भी दर्शित होता है कि किशोरों की गिरफ्तारी और जमानत पर छोड़े जाने तथा अभिरक्षा के संबंध में किशोर (की आयु) की गणना की तारीख अपराध किए जाने की तारीख होती है न कि उसके पेश किए जाने की तारीख ।

17. इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अधिनियम की धारा 32 का अत्यधिक अवलंब लिया है, उसमें भी न्यायालय में किसी किशोर को पेश किए जाने की परिकल्पना नहीं की गई है ।

18. यहां पर 1986 के अधिनियम की धारा 3 और 26 के प्रति निर्देश करना भी उपयोगी होगा । अधिनियम की धारा 3 और 26 इस प्रकार हैं :–

"3. **ऐसे किशोर के बारे में जांच चालू रखना जो किशोर नहीं रह गया है** – जहां किसी किशोर के विरुद्ध जांच आरंभ कर दी गई है और उस जांच के दौरान वह किशोर नहीं रह जाता है वहां उस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उस व्यक्ति के बारे में जांच ऐसे चालू रखी जा सकेगी और आदेश ऐसे किए जा सकेंगे मानो वह व्यक्ति किशोर बना रहा है ।"

"26. **लंबित मामलों के बारे में विशेष उपबंध** – इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी किसी क्षेत्र में के न्यायालय में, उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त है, लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां उस न्यायालय में चालू रखी जाएंगी, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और उस किशोर के बारे में कोई दंडादेश करने के बजाय उस किशोर को किशोर-न्यायालय भेज देगा, जो उस किशोर के बारे में आदेश इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे करेगा मानो इस अधिनियम के अधीन जांच पर उसका समाधान हो गया है कि किशोर ने वह अपराध किया है ।"

19. अधिनियम की उद्देशिका, उसके लक्ष्यों और उद्देश्यों के साथ पठित अधिनियम की धारा 3 और 26 में अंतर्निहित विधायी आशय स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है । अधिनियम की (उक्त) धाराओं, उद्देशिका, लक्ष्यों और उद्देश्यों का एक साथ परिशीलन करने से किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं रह जाता कि विधायिका का

आशय उपेक्षित या अपचारी किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास का तथा उसका न्यायनिर्णयन करने का उपबंध करने का है । अधिनियम की धारा 3 और 26 का निर्वचन अब कोई अनिर्णीत विषय नहीं रहा । 1986 के अधिनियम की धारा 3 और 26, जैसाकि ऊपर उद्धरित किया गया है, राजस्थान बालक अधिनियम, 1970 (1970 का राजस्थान अधिनियम संख्यांक 6) की धारा 3 और 26 के समविषयक है । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **उमेश चन्द्र** वाले (उपर्युक्त) मामले में राजस्थान अधिनियम की उद्देशिका, लक्ष्यों और उद्देश्यों तथा धारा 3 और 26 पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि यह अधिनियम एक सामाजिक विधान है और यह उन शिशुओं की संरक्षा के लिए अभिप्रेत है जो दांडिक अपराध करते हैं, अत: ऐसे उपबंधों का उदारतापूर्वक और अर्थपूर्ण अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जिससे कि अधिनियम के उद्देश्य को पूरा किया जा सके । तत्पश्चात् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

"जहां तक कि अधिनियम के साधारण रूप से लागू होने की बात का संबंध है, हमारा स्पष्ट रूप से यह मत है कि अधिनियम के लागू होने के लिए सुसंगत तारीख वह तारीख है जिसको अपराध हुआ था । बालक अधिनियम युवा बालकों के आपराधिक कार्यों के परिणामों से उन्हें इस आधार पर संरक्षा देने के लिए अधिनियमित किया गया था कि उस आयु में उनके मस्तिष्क के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह आपराधिक मन:स्थिति के लिए परिपक्व है जैसाकि वयस्क की दशा में होता है । चूंकि इस अधिनियम का अभिप्राय यह है, इसलिए स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकालना होगा कि इस अधिनियम के लागू होने की सुसंगत तारीख वह तारीख है जिसको अपराध हुआ है । यह बिल्कुल ही संभव है कि उस समय तक जब तक कि यह मामला विचारण के लिए आता है, और चूंकि आयु इच्छा के अनुसार नहीं बढ़ती है इसलिए वह बालक, बालक नहीं रह जाता । अत: धारा 3 और धारा 26 आवश्यक हो गई है । दोनों ही धाराएं स्पष्टत: अधिनियम के लागू होने की सुसंगत तारीख की दिशा में यह संकेत करती हैं कि वह घटना की तारीख ही है । स्पष्ट रूप से हमारा यह मत है कि, जहां तक कि अभियुक्त की आयु का संबंध है जो कि यह दावा करती है कि वह बालक है, अधिनियम के लागू होने की सुसंगत तारीख घटना की तारीख है, न कि विचारण की तारीख ।" (अधोरेखांकित पर बल दिया गया)

20. जैसाकि पहले अवेक्षा की जा चुकी है, **उमेश चन्द्र** वाले (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय की **अरनित दास** वाले (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अवेक्षा नहीं की गई थी । हमारा यह स्पष्ट मत है कि **उमेश चन्द्र** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि सही विधि है और यह कि **अरनित दास** वाले (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें अधिकथित विधिमान्य विधि है । तदनुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा **उमेश चन्द्र** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि सही विधि है ।

प्रश्न (ख) :

क्या 2000 का अधिनियम ऐसे मामले में लागू होगा जिसमें कार्यवाही 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई थी और जब 2000 का अधिनियम 1 अप्रैल, 2001 से प्रवृत्त हुआ, उस समय लंबित थी ।

21. इस प्रश्न पर, हमने अपीलार्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री पी. एस. मिश्र, मध्यक्षेपक की ओर से विद्वान् काउंसेल (सुश्री) महारूख अदेनवाला और झारखंड राज्य की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री अमरेन्द्र शरण की दलीलों को सुना । वस्तुत:, मध्यक्षेपक के विद्वान् काउंसेल ने श्री मिश्र की दलीलों को ही अपनाया है । श्री मिश्र ने यह दलील दी कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध 1986 के अधिनियम के अधीन लंबित कोई भी कार्यवाही 2000 के अधिनियम के अंतर्गत आएगी और उसका फायदा 2000 के अधिनियम

के अधीन यथा परिभाषित किशोर होने की दशा में प्राप्त होगा यदि अपराध किए जाने के समय उसकी आयु 18 वर्ष से कम की थी। अपनी इस दलील के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने अधिनियम की धारा 20 के उपबंधों का तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा विरचित नियम 61 और 62 का पुरजोर अवलंब लिया। इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री शरण ने यह दलील दी कि 1986 का अधिनियम, 2000 के अधिनियम की धारा 69(1) द्वारा निरसित कर दिया गया है अत: 2000 के अधिनियम के उपबंध, 1986 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन आरंभ किए गए और लंबित किसी मामले/जांच के प्रति लागू नहीं होंगे क्योंकि 2000 का अधिनियम भूतलक्षी रूप से प्रभावी नहीं है।

22. पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए, 2000 के अधिनियम में दी गई उन परिभाषाओं और धाराओं का, जो विचाराधीन मामले का निपटारा करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं, फौरी परिशीलन करना आवश्यक होगा।

23. जैसाकि इसमें इसके पूर्व कहा गया है अधिनियमों का संपूर्ण उद्देश्य किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास करने का उपबंध करने का है। चूंकि ये अधिनियम फायदाप्रद विधान हैं, अत: इनका निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए जो कि विधान के उद्देश्य को अर्थात् किशोरों को फायदा देने के उद्देश्य को पूरा करे।

24. 2000 के अधिनियम के तारीख 1 अप्रैल, 2001 से प्रवृत्त होने से पूर्व तक, यह वह तारीख है, जिस तारीख को उक्त अधिनियम केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 1 की उपधारा (3) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राजपत्र में जारी तारीख 28 फरवरी, 2001 की अधिसूचना द्वारा प्रवृत्त हुआ था, 1986 का अधिनियम प्रवृत्त बना हुआ था। (2000 के) अधिनियम की धारा 69(1) द्वारा 1986 के अधिनियम को निरसित किया गया था। धारा 69 इस प्रकार है :-

> "69. (1) **निरसन और व्यावृत्ति** – किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (1986 का 53) इसके द्वारा निरसित किया जाता है।
>
> (2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उक्त अधिनियम के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी।" (अधोरेखांकित पर बल दिया गया)

25. उपधारा (2) में यह अनुध्यात है कि 1986 के अधिनियम के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई 2000 के अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी। इस प्रकार, यद्यपि 1986 के अधिनियम का 2000 के अधिनियम द्वारा निरसन कर दिया गया था; तथापि 1986 के अधिनियम के अधीन की गई किसी बात या किसी कार्रवाई को उपधारा (2) द्वारा इस रूप में व्यावृत्त बनाया गया है; मानो कि वह कार्रवाई 2000 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई है।

26. धारा 20, जिस पर कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा पुरजोर अवलंब लिया गया है, लंबित मामलों की बाबत विशेष उपबंध के बारे में है। धारा 20 इस प्रकार है :-

> "20. **लंबित मामलों के बारे में विशेष उपबंध** – इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के न्यायालय में, उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां उस न्यायालय में इस प्रकार चालू रखी जाएंगी, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और उस किशोर के बारे में कोई दंडादेश करने के बजाय उस किशोर को बोर्ड को भेज देगा, जो उस किशोर के बारे में आदेश इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे करेगा मानो इस अधिनियम के अधीन जांच पर उसका समाधान हो गया है कि किशोर ने वह अपराध किया है।"

27. 1986 के अधिनियम और 2000 के अधिनियम के बीच स्पष्ट विभेद किशोर की परिभाषा के बारे में है । 1986 के अधिनियम की धारा 2(ज) में किशोर को इस रूप में परिभाषित किया गया है :–

"2(ज) 'किशोर' से अभिप्रेत है ऐसा लड़का जिसने सोलह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है या ऐसी लड़की जिसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है;"

2000 के अधिनियम की धारा 2(ट) में किशोर को इस रूप में परिभाषित किया गया है :–

"2(ट) 'किशोर' या 'बालक' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है ;"

28. इस प्रकार, 1986 के अधिनियम और 2000 के अधिनियम के बीच स्पष्ट विभेद यह है कि 1986 के अधिनियम के अधीन किशोर से अभिप्रेत है ऐसा पुरुष किशोर जिसने 16 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है और ऐसी महिला किशोर जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है । 2000 के अधिनियम के अधीन पुरुष और महिला किशोर के बीच कोई विभेद नहीं किया गया है । 1986 के अधिनियम के अधीन विहित 16 वर्ष की आयु सीमा को 2000 के अधिनियम में बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया है । 2000 के अधिनियम में जहां कहीं "किशोर" शब्द आया है, वहां उसका अर्थ ऐसे व्यक्ति के बारे में लिया जाएगा जिसने कि 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है ।

29. धारा 3 में जो उपबंध है, वह इस प्रकार है :–

"3. **ऐसे किशोर के बारे में जांच चालू रखना जो किशोर नहीं रह गया है** – जहां विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर या देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक के विरुद्ध जांच आरंभ कर दी गई है और उस जांच के दौरान वह किशोर या बालक, किशोर या बालक नहीं रह गया है वहां इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी उस व्यक्ति के बारे में जांच ऐसे चालू रखी जा सकेगी और आदेश ऐसे किए जा सकेंगे मानो ऐसा व्यक्ति किशोर या बालक बना रहा है ।"

इस प्रकार, जहां कोई जांच आरंभ की जा चुकी है और किशोर कोई किशोर नहीं रहा है, अर्थात् 18 वर्ष की आयु पार कर चुका है, तो उस दशा में भी जांच जारी रखी जानी चाहिए और ऐसे व्यक्ति की बाबत किए गए आदेश उस रूप में होंगे मानो कि ऐसा व्यक्ति किशोर ही बना हुआ है ।

30. इसी प्रकार, धारा 64 के अधीन यह उपबंध है कि जहां कि कोई किशोर 2000 के अधिनियम के प्रारंभ पर कारावास का दंड भोग रहा है वहां उसे ऐसा दंड भोगने के बजाय किसी विशेष गृह में भेजा जाएगा या किसी समुचित संस्थान में रखा जाएगा । इन उपबंधों से यह दर्शित होता है कि उन मामलों में भी जहां कि मात्र जांच प्रारंभ की गई है अथवा जहां कि किसी किशोर को दंडादिष्ट किया गया है, 2000 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे । अतः धारा 20 का मूल्यांकन पूर्वोक्त उपबंधों के संदर्भ में किया जाना चाहिए ।

31. अधिनियम की धारा 20, जैसी कि ऊपर उद्धरित की गई है, लंबित मामलों की बाबत विशेष उपबंध के बारे में है और यह सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है । "इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के न्यायालय में उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां" वाक्य बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण है । किसी न्यायालय में लंबित किशोर विषयक कार्यवाहियां, जिन्हें अधिनियम की धारा 20 में निर्दिष्ट किया गया है, 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व आरंभ की गई कार्यवाहियों से संबंधित हैं और जो 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के समय लंबित पड़ी हुई हैं । "किसी....न्यायालय" पद के अंतर्गत साधारण दांडिक न्यायालय भी आते हैं । यदि व्यक्ति 1986 के अधिनियम के अधीन "किशोर" था तो कार्यवाहियां दांडिक न्यायालयों में लंबित नहीं रहेंगी। वे कार्यवाहियां केवल तभी दांडिक न्यायालयों में लंबित रहेंगी यदि लड़के की आयु 16 वर्ष से अधिक और लड़की की आयु 18 वर्ष से अधिक हो गई है । इससे यह दर्शित होता है कि धारा 20 में उन मामलों के

प्रति निर्देश किया गया है जहां कोई व्यक्ति 1986 के अधिनियम के अधीन कोई किशोर नहीं रह गया है किन्तु उसने 18 वर्ष की आयु अभी पार नहीं की है तो लंबित मामला उस न्यायालय में उसी प्रकार जारी रहेगा मानो कि 2000 का अधिनियम पारित ही नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह न्यायालय उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और किशोर के बारे में कोई दंडादेश पारित किए जाने के बजाय उस किशोर को बोर्ड के समक्ष पेश करेगा और वह बोर्ड उस किशोर की बाबत आदेश पारित करेगा ।

32. इस संबंध में, यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि 2000 के अधिनियम की धारा 16, 1986 के अधिनियम की धारा 22 के समान है । इसी प्रकार 2000 के अधिनियम की धारा 15, 1986 के अधिनियम की धारा 21 के समविषयक है । अतः, ऐसे किसी निर्वचन से भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन नहीं होता और किशोर ऐसी किसी शास्ति से, जो कि 1986 के अधिनियम के अधीन उस पर अधिरोपित की जा सकती हो, अधिक शास्ति का भागी नहीं होता है ।

33. श्री मिश्र ने केन्द्रीय सरकार द्वारा विरचित नियम 61 और 62 का अवलंब लिया । श्री मिश्र के अनुसार, विशिष्टतया नियमों के नियम 62 में लंबित मामले आते हैं और अपीलार्थी नियम 62 का फायदा पाने का हकदार है । नियम 62 इस प्रकार है :–

> * "62. **लंबित मामले** – (1) विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर को या किसी बालक को अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के फायदों से वंचित नहीं किया जाएगा ।
>
> (2) उन सभी लंबित मामलों पर, जिन्हें अंतिम रूप नहीं दिया गया है, अधिनियम के उपबंधों तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों के निबंधनों के अनुसार कार्रवाई की जाएगी और उनका निपटारा किया जाएगा ।
>
> (3) विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर अथवा बालक को उपनियम (1) के फायदे प्रदान किए जाएंगे और एतद्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे फायदे न केवल ऐसे अभियुक्त को उपलब्ध होंगे, जो अपराध के किए जाने के समय किशोर या शिशु था, बल्कि उनको भी उपलब्ध होंगे जो किसी जांच या विचारण के लंबित रहने के दौरान किशोर या शिशु नहीं रह गए हैं ।
>
> (4) विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर या किसी बालक के निरोध या रोक की अवधि की संगणना करते समय ऐसी संपूर्ण अवधि को, जो किशोर या शिशु के पहले ही अभिरक्षा, निरोध या रोक में पहले ही बिता चुका है, सक्षम प्राधिकारी के अंतिम आदेश में अंतर्विष्ट रोक या निरोध की अवधि के भागरूप गणना में लिया जाएगा ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "62. **Pending Cases.** – (1) No juvenile in conflict with law or a child shall be denied the benefits of the Act and the rules made thereunder.
>
> (2) All pending cases which have not received a finality shall be dealt with and disposed of in terms of the provisions of the Act and the rules made thereunder.
>
> (3) Any juvenile in conflict with law, or a child shall be given the benefits under sub-rule (1) and it is hereby clarified that such benefits shall be made available not only to those accused who was juvenile or a child at the time of commission of an offence, but also to those who ceased to be a juvenile or a child during the pendency of any enquiry or trial.
>
> (4) While computing the period of detention of stay of a juvenile in conflict with law or of a child, all such period which the juvenile or the child has already spent in custody, detention or stay shall be counted as part of the period of stay or detention contained in the final order of the competent authority."

34. इस नियम से यह भी उपदर्शित होता है कि विधायिका का आशय यह है कि 2000 के अधिनियम के उपबंध लंबित मामलों के संबंध में लागू होंगे परन्तु यह तब जबकि तारीख 1 अप्रैल, 2001 को अर्थात् 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख को वह व्यक्ति 2000 के अधिनियम में यथापरिभाषित पद के अर्थांतर्गत "किशोर" है अर्थात् उसकी आयु 18 वर्ष से अधिक नहीं हुई है ।

35. श्री मिश्र ने **उपेन्द्र कुमार** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय के प्रति निर्देश किया, जिसमें इस न्यायालय द्वारा **भोला भगत** बनाम **बिहार राज्य**[2], **गोपीनाथ घोष** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3], **भूप राय** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[4] और **प्रदीप कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[5] वाले मामलों में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया गया था । इस मामले में यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि उन अभियुक्तों को, जो किशोर थे, तत्समय प्रवृत्त अधिनियम के उपबंधों के फायदों से वंचित नहीं किया जा सकता ।

36. अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि 2000 के अधिनियम के उपबंध 1986 के अधिनियम के अधीन किए गए अपराधों के संबंध में आरंभ किए गए उन मामलों के प्रति, जिनमें विचारण/जांच लंबित है, लागू होंगे । परन्तु यह तब जबकि उस व्यक्ति ने तारीख 1 अप्रैल, 2001 को 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की हो ।

37. इस मामले में शुद्ध परिणाम यह है कि :–

(क) किशोर की आयु का अवधारण करने के लिए गणना किए जाने की तारीख अपराध किए जाने की तारीख होती है न कि वह तारीख जिस तारीख को उसे प्राधिकारी या न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है ।

(ख) 2000 का अधिनियम किसी न्यायालय/प्राधिकारी के समक्ष लंबित ऐसी किसी कार्यवाही के प्रति लागू होगा जो 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई हो तथा 2000 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के समय लंबित हो और उस व्यक्ति ने तारीख 1 अप्रैल, 2001 को 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की हो ।

38. अपील का उपर्युक्त निबंधनों के अनुसार निपटारा किया जाता है ।

2001 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 3749

न्या. सिन्हा –

प्रस्तावना :

39. किशोर न्याय अधिनियम अपने वर्तमान स्वरूप में किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम, 1985 का, जिसे बीजिंग नियम (नियम) के नाम से भी जाना जाता है, अनुसरण करने की हमारे देश की बाध्यता के निर्वहन में अधिनियमित किया गया है ।

नियम :

40. उक्त नियम के भाग 1 में उन साधारण सिद्धांतों का उपबंध किया गया है जिन्हें साधारणतया

---

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 592.
[2] (1997) 8 एस. सी. सी. 720.
[3] (1984) सप्ली. एस. सी. सी. 228.
[4] (1989) 3 एस. सी. सी. 1.
[5] (1995) सप्ली. 4 एस. सी. सी. 419.

व्यापक सामाजिक नीति के संबंध में तथा अत्यधिक संभव सीमा तक किशोर कल्याण की अभिवृद्धि को लक्ष्य बनाते हुए मूलभूत परिप्रेक्ष्य का कहा जाता है, जिससे कि किशोर न्याय पद्धति द्वारा मध्यक्षेप की आवश्यकता तो कम होगी और तदुपरि उस अपहानि में कमी आएगी जो किसी मध्यक्षेप द्वारा कारित की जाती है । किशोर के संबंध में प्रलक्षित सामाजिक नीति को अन्य बातों के साथ-साथ किशोर आपराधिकता तथा अपचारिता के मामले में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है उसका उल्लेख नियम 1.1 से 1.13 में किया गया है । नियम 1.4 में किशोर न्याय को प्रत्येक देश की राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया के अभिन्न भाग के रूप में परिभाषित किया गया है, इस प्रकार यह सभी किशोरों के लिए सामाजिक न्याय के व्यापक ढांचे के अंतर्गत आता है और साथ ही समाज में युवाओं की संरक्षा तथा शांतिपूर्ण व्यवस्था बनाए रखने में सहायक सिद्ध हो रहा है । नियम 1.6 में ऐसी किशोर न्याय को पद्धति के प्रति निर्देश किया गया है जो सेवाओं में आलिप्त कार्मिकों की क्षमता में, जिसके अंतर्गत उनकी कार्य पद्धति, दृष्टिकोण और व्यवहार भी है, सुधार लाने तथा उसे बनाए रखने की दृष्टि से सुव्यवस्थित रूप से विकसित और समन्वित हो, जबकि नियम 1.5 में सदस्य-राज्यों में उन विद्यमान स्थितियों पर ध्यान देने की ईप्सा की गई है जो विशिष्ट नियमों के क्रियान्वयन की ऐसी रीति हो सकती है जो आवश्यक रूप से अन्य राज्यों द्वारा अपनाई गई रीति से भिन्न हो । नियम 2.1 में नियमों को, किसी प्रकार का विभेद किए बिना, लागू किए जाने का उपबंध किया गया है । नियम 2.2 में परिभाषाएं दी गई हैं, जो कि इस प्रकार हैं :–

"(क) किशोर एक ऐसा बालक या युवा व्यक्ति है जिसके संबंध में संबंधित विधिक पद्धतियों के अधीन किसी अपराध के लिए ऐसी रीति में कार्यवाही की जा सकती है जो किसी वयस्क से भिन्न हो ;

(ख) अपराध ऐसा कोई व्यवहार (कार्य या लोप) है जो संबंधित विधिक पद्धतियों के अधीन विधि द्वारा दंडनीय है ;

(ग) किशोर अपराधी ऐसा बालक या युवा व्यक्ति है जिसने अभिकथित रूप से अपराध किया है या जिसके बारे में यह पाया गया है कि उसने अपराध किया है ।"

41. नियम 2.3 में अन्य बातों के साथ-साथ विधियां, नियम बनाने तथा उपबंध करने का उपबंध है जो विनिर्दिष्ट रूप से किशोर अपराधियों तथा उन संस्थाओं और निकायों को लागू होते हैं जिन्हें किशोर न्याय का प्रशासन करने के कृत्य सौंपे गए हैं और जिन्हें :–

(क) किशोर अपराधियों की, उनके मूल अधिकारों की संरक्षा करते हुए, भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए,

(ख) समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए,

(ग) निम्नलिखित नियमों को संपूर्ण रूप से तथा उचित रूप से कार्यान्वित करने के लिए ।

42. किशोर की आयु का अवधारण सदस्य-देशों द्वारा उनकी विधिक पद्धति को ध्यान में रखते हुए और एतद्नुसार पूर्णतया आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और विधिक पद्धतियों का सम्मान करते हुए किया जाता है । इस प्रकार किशोर की परिभाषा के अधीन भिन्न-भिन्न आयु अर्थात् 7 वर्ष से 18 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्ति आते हैं । नियम 3 में उन नियमों को विस्तारित करने का उपबंध किया गया है जिनके अंतर्गत निस्संदेह प्रत्येक विशेष आयु सीमा पर निर्भर करते हुए (क) प्रास्थिति अपराध; (ख) किशोर कल्याण और देखरेख की कार्यवाहियां; और (ग) युवा वयस्क अपराधियों के संबंध में, की जाने वाली कार्यवाहियां आती हैं । नियम 4 में यह उपबंधित है कि आपराधिक उत्तरदायित्व की न्यूनतम आयु भावनात्मक, मानसिक और बौद्धिक परिपक्वता के तथ्यों को ध्यान में रखकर अत्यधिक कम नियत नहीं की जानी चाहिए । नियम 5 में यह उपबंधित है कि किशोर न्याय प्रशासन में किशोर के हित पर बल दिया जाएगा और उसमें यह सुनिश्चित किया जाएगा कि किशोर अपराधियों के प्रति की गई कोई प्रतिक्रिया सदैव

अपराधियों और अपराध, दोनों, की परिस्थितियों के अनुपात में हो । नियम 6 में विवेकाधिकार की परिधि का उपबंध किया गया है । नियम 7.1 में किशोर के अधिकारों के बारे में उपबंध किया गया है, जो कि इस प्रकार है :–

"मूलभूत प्रक्रियात्मक रक्षोपायों की जैसे कि निर्दोषिता की उपधारणा करने, आरोपों को अधिसूचित किए जाने के अधिकार, मौन रहने के अधिकार, काउंसेल की सेवाएं लेने अर्थात् परामर्श करने के अधिकार, माता या पिता अथवा संरक्षक के उपस्थित रहने के अधिकार, साक्षियों का सामना करने तथा उनकी प्रतिपरीक्षा करने के अधिकार तथा उच्चतर प्राधिकारी को अपील करने के अधिकार की कार्यवाहियों के सभी प्रक्रमों पर गारंटी दी जाएगी ।"

43. नियम 8 में एकान्तता की संरक्षा का उपबंध किया गया है । नियम 9 में यह उपबंधित है कि उक्त नियमों का निर्वचन संयुक्त राष्ट्र द्वारा कैदियों के साथ व्यवहार किए जाने के संबंध में अंगीकार किए गए मानक न्यूनतम नियमों तथा अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा मान्यता प्राप्त उन अन्य मानवाधिकार लिखतों तथा मानकों का, जो युवाओं की देखभाल और संरक्षा के संबंध में हैं, निर्वचन इन्हें लागू न किए जाने के अर्थ में नहीं किया जाएगा । नियम 27 में भी संयुक्त राष्ट्र द्वारा कैदियों के साथ व्यवहार किए जाने के संबंध में अंगीकार किए गए मानक न्यूनतम नियमों को लागू किए जाने का उपबंध किया गया है ।

44. उक्त नियमों के भाग 2 में अन्वेषण और अभियोजन, अपयोजन, पुलिस के भीतर विशेषोपयोजन, विचारण के लंबित रहते निरोध का उपबंध किया गया है । नियम 13 निम्नानुसार है :–

"13.1. विचारण के लंबित रहते निरोध केवल अंतिम उपाय के रूप में किया जाएगा और यथासंभव अल्पतम अवधि के लिए किया जाएगा ।

13.2. जहां कहीं संभव हो, विचारण के लंबित रहते निरोध में रखे जाने के स्थान पर आनुकल्पिक उपाय अपनाए जाएंगे यथा कड़े पर्यवेक्षण में रखना, कुटुंब अथवा किसी शैक्षणिक संस्था या गृह में गहन देखभाल किया जाना या रखा जाना ।

13.3. विचारण के लंबित रहते निरोधाधीन किशोर संयुक्त राष्ट्र द्वारा कैदियों के साथ व्यवहार किए जाने के संबंध में अंगीकार किए गए मानक न्यूनतम नियमों के अंतर्गत सभी अधिकारों और गारंटियों के हकदार होंगे ।

13.4. विचारण के लंबित रहते निरोधाधीन किशोरों को वयस्कों से अलग रखा जाएगा और उन्हें किसी पृथक् संस्था में अथवा वयस्कों को रखने वाली किसी संस्था के पृथक् भाग में निरुद्ध रखा जाएगा ।

13.5. किशोरों की, अभिरक्षा के दौरान, देखभाल की जाएगी, संरक्षा की जाएगी और उन्हें ऐसी सभी आवश्यक व्यक्तिगत सहायता – सामाजिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक, मनोवैज्ञानिक, चिकित्सीय और भौतिक – प्राप्त होगी जो उनकी आयु, लिंग या व्यक्तित्व को ध्यान में रखते हुए उनके लिए आवश्यक हो ।"

45. भाग 3 में न्यायनिर्णयन तथा मामलों का निपटारा करने का उपबंध किया गया है जिनके निबंधनों के अनुसार विहित सक्षम प्राधिकारी न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम होंगे । नियम 15 में विधिक काउंसेल, माता-पिता तथा संरक्षक के संबंध में उपबंध किया गया है । नियम 16 में सामाजिक जांच रिपोर्टों का उपबंध किया गया है । नियम 16.1 निम्नानुसार है :–

"छोटे अपराधों से संबंधित मामलों को छोड़कर ऐसे सभी मामलों में इससे पूर्व कि सक्षम प्राधिकारी दंडादेश सुनाए जाने से पूर्व मामले का अंतिम निपटारा करे, उसके द्वारा उस पृष्ठभूमि और उन परिस्थितियों का, जिनमें कि किशोर रह रहा है या उन स्थितियों का, जिनके अधीन अपराध किया

गया है, उचित तौर पर अन्वेषण किया जाएगा जिससे कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा मामले का न्यायसम्मत न्यायनिर्णयन किया जा सके ।"

46. नियम 17 में न्यायनिर्णयन और मामले का निपटारा करने संबंधी मार्गदर्शक सिद्धांतों का उपबंध किया गया है, जो कि इस प्रकार है :–

"17.1. सक्षम प्राधिकारी द्वारा मामले का निपटारा निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर किया जाएगा :–

(क) जो प्रतिक्रिया की जानी हो वह सदैव न केवल परिस्थितियों और अपराध की गंभीरता के अनुरूप होगी अपितु किशोर की परिस्थितियों और आवश्यकताओं तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप भी होगी ;

(ख) किशोर की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर निर्बंधन ध्यानपूर्वक विचार किए जाने के पश्चात् ही अधिरोपित किए जाएंगे और यथासंभव न्यूनतम सीमा में होंगे ;

(ग) किशोर को उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से किसी व्यक्ति के विरुद्ध गंभीर प्रकृति का हिंसात्मक कार्य या अन्य गंभीर प्रकृति के अपराध लगातार किए जाने की बाबत अधिनिर्णय किए जाने पर ही, जब तक कि कोई अन्य समुचित प्रतिक्रिया न हो, वंचित किया जाएगा ;

(घ) किशोर का हित उसके मामले पर विचार किए जाने का मार्गदर्शक कारक होगा ।

17.2. किशोरों द्वारा किए गए किसी अपराध के लिए मृत्यु का दंड अधिरोपित नहीं किया जाएगा ।

17.3. किशोरों को शारीरिक दंड नहीं दिया जाएगा ।

17.4. सक्षम प्राधिकारी को कार्यवाहियों को किसी भी समय बंद करने की शक्ति होगी ।"

47. यह उल्लेख किया गया है कि युवा व्यक्तियों के प्रति न्यायनिर्णयन करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत विरचित करने में मुख्य कठिनाई इस तथ्य से पैदा होती है कि इसमें तात्विक (दार्शनिक) प्रकृति के अनिर्णीत अंतर्विरोध हैं जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

(क) पुनर्वास बनाम मात्र परिणाम ;

(ख) सहायता बनाम दमन (निरोध) और दंड ;

(ग) किसी व्यक्तिगत मामले के विलक्षण गुणागुण के अनुसार प्रतिक्रिया के मुकाबले सामान्यतः समाज की संरक्षा के अनुसार प्रतिक्रिया ;

(घ) साधारण अपभीति (निवारण) बनाम व्यक्तिगत अशक्तता ।

किशोर न्याय विधान के उद्देश्य :

48. किशोर न्याय विधान का प्रयोजन उन बालकों को सहायता प्रदान करना है जिन्हें वयस्कों के साथ कारावास में रखा जाता है और उनके साथ विभिन्न प्रकार से दुर्व्यवहार किया जाता है । यह उपयुक्त होगा कि विधान के इसी उद्देश्य और प्रयोजन का विवेचन इस स्पष्ट बोध के साथ किया जाए जिससे कि किशोर अपचारियों को राहत प्राप्त हो सके ।

49. निस्संदेह किशोर न्याय की समस्या एक अत्यंत करुण मानवीय हित की समस्या है जो कि वस्तुतः केवल इस देश तक ही सीमित न रह कर बाह्य राष्ट्रों की भी समस्या है । वर्ष 1966 में, अपराध के निवारण तथा अपराधियों के उपचार पर लंदन में हुई द्वितीय संयुक्त राष्ट्र कांग्रेस में इस विवाद्यक पर विचार-विमर्श हुआ था और अनेक उपचारात्मक सिफारिशों को मान लिया गया था । किशोर न्याय के प्रशासन

संबंधी संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम के अनुरूप देश में किशोर न्याय पद्धति के क्रियान्वयन के लिए वर्ष 1986 में किशोर न्याय अधिनियम प्रवर्तन में आया । तत्समय विद्यमान अधिनियमों, राज्य और संसदीय दोनों के कार्यकरण का पुनर्विलोकन करने से यह दर्शित होता है कि उन बालकों पर अत्यधिक ध्यान देना आवश्यक पाया गया था जो कि सामाजिक कुसंतुलन, अपचारिता अथवा उपेक्षा की स्थिति में पाए जाते हैं । वयस्कों के लिए जो न्यायिक व्यवस्था विद्यमान है उसे किशोरों के संबंध में लागू किया जाना उपयुक्त नहीं समझा जा सकता । ऐसे किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास में अनौपचारिक पद्धति और समुदाय आधारित कल्याण अभिकरणों को और अधिकाधिक संख्या में शामिल करने की भी जरूरत है ।

50. किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1986 का अधिनियम" कहा गया है) तथा किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) (जिसे इसमें इसके पश्चात् "2000 का अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों का अर्थान्वयन ऊपर वर्णित न्यूनतम मानकों को ध्यान में रखते हुए किया जाना आवश्यक है क्योंकि उन्हें विनिर्दिष्ट रूप से उनमें निर्दिष्ट किया गया है ।

51. किशोर न्याय अधिनियम, 1986 का लक्ष्य निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने का है :–

(i) देश में किशोर न्याय के लिए एक समान विधिक ढांचा गठित करना, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी बालक किसी भी परिस्थिति में जेल या पुलिस बंदीगृह में नहीं रखा जाए । किशोर कल्याण बोर्ड और किशोर न्यायालयों की स्थापना द्वारा इसे सुनिश्चित किया जा रहा है ;

(ii) सामाजिक कुसंतुलन की किसी स्थिति में पाए गए बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पूर्ण विस्तार में किशोर अपचार के निवारण और उपचार के लिए विशेष उपागम का उपबंध करना ;

(iii) किशोर न्याय पद्धति की परिधि के भीतर आने वाले बालकों के विभिन्न प्रवर्गों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास के लिए अपेक्षित मशीनरी और अवसंरचना को स्पष्ट करना । उपेक्षित किशोरों के लिए पर्यवेक्षण गृहों, किशोरगृहों की और अपचारी किशोरों के लिए विशेष गृहों की स्थापना द्वारा इसे प्राप्त करने का प्रस्ताव है ;

(iv) अन्वेषण और अभियोजन, न्यायनिर्णयन और निपटारे तथा देखरेख, उपचार और पुनर्वास के संबंध में किशोर न्याय के प्रशासन के लिए प्रतिमान और मानदंड स्थापित करना ;

(v) किशोर न्याय की प्रारूपिक पद्धति तथा उपेक्षित या सामाजिक रूप से कुसंतुलित बालकों के कल्याण के लिए स्थापित स्वैच्छिक अभिकरणों के बीच समुचित संबंध और सहकार का विकास करना और उनके उत्तरदायित्वों और भूमिकाओं के क्षेत्र को विनिर्दिष्ट रूप में परिभाषित करना ;

(vi) किशोरों के संबंध में विशेष अपराधों का गठन करना और उनके लिए दंड का उपबंध करना ;

(vii) किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ मानक न्यूनतम नियमों के अनुरूप देश में किशोर न्याय पद्धति को प्रवृत्त करना ।

52. 1986 के अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में देश में एक समान किशोर न्याय पद्धति की स्कीम का, जिससे कि किसी किशोर को जेल या पुलिस हवालात में न रखा जा सके और साथ ही साथ देखरेख, संरक्षण आदि के लिए किशोर अपचारिता के निवारण और उपचार का उपबंध किया गया है ।

53. धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि जहां किसी किशोर के विरुद्ध जांच आरंभ कर दी गई है और उस जांच के दौरान वह किशोर नहीं रह जाता है वहां भी उसमें (उस अधिनियम में) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उस व्यक्ति के बारे में जांच ऐसे चालू रखी जा सकेगी और आदेश ऐसे किए जा सकेंगे मानो वह व्यक्ति किशोर बना रहा है । अधिनियम के अध्याय 2 में सक्षम

प्राधिकारियों और किशोरों के लिए किशोर कल्याण बोर्ड, किशोर न्यायालय, किशोर गृह, विशेष गृह, संप्रेक्षण गृह और पश्चात्वर्ती देखरेख संगठन जैसी संस्थाओं का उपबंध किया गया है । अध्याय 3 में उपेक्षित किशोरों के लिए उपबंध किया गया है । धारा 17 में अनियत्रंणीय किशोरों के लिए उपबंध किया गया है । अध्याय 4 अपचारी किशोरों के बारे में है । धारा 18 से धारा 26 में ऐसे किशोरों की, जो किसी जमानतीय या अजमानतीय अपराध के अभियुक्त हैं, जमानत और अभिरक्षा का, उनके संबंध में कार्रवाई किए जाने की रीति का तथा अपचारी किशोरों के बारे में या उनके विरुद्ध जो आदेश पारित किए जा सकेंगे, उनका उपबंध किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 8 में (यह उपबंध है कि उसमें) अधिकथित कार्यवाहियां किसी किशोर के विरुद्ध नहीं हो सकती हैं । किसी किशोर या ऐसे किसी व्यक्ति का, जो किशोर नहीं है, संयुक्त रूप से विचारण नहीं किया जा सकता । किसी विधि के अधीन किसी अपराध के लिए किसी किशोर की दोषसिद्धि से कोई निरर्हता नहीं होती है । धारा 26 में अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख को किसी न्यायालय में किशोर विषयक लंबित कार्यवाहियों के बारे में विशेष उपबंध अंतर्विष्ट हैं । अध्याय 5 (धारा 27 से धारा 40) में अधिनियम के अधीन साधारणत: सक्षम प्राधिकारियों की प्रक्रिया को और ऐसे प्राधिकारियों के आदेशों की अपील और पुनरीक्षण (आवेदनों) को अधिकथित किया गया है । अध्याय 6 (धारा 41 से धारा 45) में किशोरों के बारे में विशेष अपराधों के संबंध में उपबंध किया गया है । अध्याय 7 (धारा 46 से धारा 63) में प्रकीर्ण उपबंध अंतर्विष्ट हैं ।

54. 1986 के अधिनियम की धारा 32 में सक्षम प्राधिकारी के लिए यह आज्ञापक बनाया गया है कि वह उसके समक्ष लाए गए अपचारी की आयु के बारे में जांच कराए ।

55. 1986 के अधिनियम को 2000 के अधिनियम द्वारा निरसित तथा प्रतिस्थापित किया गया है ।

56. 1986 के अधिनियम की तुलना में 2000 के अधिनियम में कतिपय परिवर्तन किए गए हैं । 2000 के अधिनियम में पुरुष किशोर और महिला किशोर के बीच के विभेद को समाप्त कर दिया गया है । 1986 के अधिनियम में ऐसे अपचारी किशोर की, जिसके बारे में यह ठहराया गया कि उसने अपराध किया है, परिभाषा के विपरीत 2000 के अधिनियम में विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को इस रूप में परिभाषित किया गया है कि विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी आयु अठारह वर्ष से कम है और जिसके बारे में यह अभिकथन है कि उसने कोई अपराध कारित किया है । धारा 3 में ऐसे किशोर के बारे में जांच चालू रखने का उपबंध किया गया है जो किशोर नहीं रह गया है ।

57. ऊपरवर्णित उपबंधों के कारण ऐसे किशोर का, जो किशोर नहीं रह गया है, एक ऐसे व्यक्ति के रूप में, मानो वह एक किशोर ही है, उपचार करने के लिए एक विधिक कल्पना सृजित की गई है । अध्याय 2 में किशोर न्याय बोर्ड के गठन का उपबंध किया गया है । बोर्ड की शक्तियों का धारा 6 में संक्षेप में वर्णन किया गया है । धारा 7 में यह समादेश है कि ऐसे मजिस्ट्रेट को, जिसके समक्ष किशोर को लाया गया है, बिना कोई विलंब किए अपनी राय अभिलिखित करनी चाहिए और यदि यह पाया जाता है कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति किशोर है तो वह उस तथ्य को अभिलिखित करेगा और उस किशोर को तथा कार्यवाही के अभिलेख को उस कार्यवाही पर अधिकारिता रखने वाले सक्षम प्राधिकारी को भेजेगा । धारा 8 और धारा 9 में संप्रेक्षण गृहों तथा विशेष गृहों के लिए उपबंध किया गया है । धारा 10 में यह उपबंधित है कि विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने पर उसे ऐसे विशेष किशोर पुलिस एकक या पदाभिहित पुलिस अधिकारी के भारसाधन के अधीन रखा जाएगा, जो मामले के किसी सदस्य को तत्काल रिपोर्ट देगा । धारा 12 में जमानत के लिए उपबंध किया गया है । किसी भी परिस्थिति में, ऐसे किसी व्यक्ति को, जो किशोर प्रतीत होता है, पुलिस हवालात में नहीं रखा जाएगा । उसे विहित रीति में तब

तक संप्रेक्षण गृह में रखा जाएगा जब तक उसे न्यायालय के समक्ष न लाया जा सके । धारा 12 की उपधारा (3) में बोर्ड के लिए यह आज्ञापक बनाया गया है कि वह किसी किशोर को कारागार में सुपुर्द करने के बजाय संप्रेक्षण-गृह में भेजने के लिए आदेश करे । धारा 14 में किसी किशोर के बारे में बोर्ड द्वारा चार मास की अवधि के भीतर जांच कराए जाने का उपबंध किया गया है । धारा 15 में ऐसे आदेश का उपबंध किया गया है जो किशोर के बारे में पारित किया जा सकेगा । धारा 15 की उपधारा (1) का खंड (छ) इस प्रकार है :-

"15. **आदेश जो किशोर के बारे में पारित किया जा सकेगा** – (1) जहां बोर्ड का जांच करने पर यह समाधान हो जाता है कि किशोर ने अपराध किया है, वहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी तत्प्रतिकूल बात के होते हुए भी, वह बोर्ड, यदि वह ऐसा करना ठीक समझते हैं, तो, –

* * * *

(छ) किशोर को निम्नलिखित अवधि के लिए विशेष गृह को भेजने का निदेश देने वाला आदेश कर सकेगा, –

(i) सत्रह वर्ष से अधिक किन्तु अठारह वर्ष की आयु से कम के किशोर की दशा में दो वर्ष से अन्यून कालावधि के लिए;

(ii) किसी अन्य किशोर की दशा में तब तक के लिए जब वह किशोर न रह जाए :

परन्तु बोर्ड, यदि उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करना अपराध की प्रकृति तथा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समीचीन है, ठहरने की कालावधि को, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, ऐसी कालावधि तक, जैसी वह ठीक समझे, घटा सकेगा ।"

58. धारा 16 में यह समादेश है कि किसी भी किशोर को मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडादिष्ट नहीं किया जाएगा और न ही जुर्माना देने में व्यतिक्रम करने पर या प्रतिभूति देने में व्यतिक्रम करने पर कारागार के सुपुर्द किया जाएगा । हमारे प्रयोजनार्थ धारा 20 और धारा 64 सुसंगत हैं । धारा 20 और धारा 64 इस प्रकार हैं :-

"20. **लंबित मामलों के बारे में विशेष उपबंध** – इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के न्यायालय में, उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां उस न्यायालय में इस प्रकार चालू रखी जाएंगी, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और उस किशोर के बारे में कोई दंडादेश करने के बजाय उस किशोर को बोर्ड को भेज देगा, जो उस किशोर के बारे में आदेश इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे करेगा मानो इस अधिनियम के अधीन जांच पर उसका समाधान हो गया है कि किशोर ने वह अपराध किया है ।"

64. **इस अधिनियम के प्रारंभ के समय दंडादेश भोग रहा विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर** – किसी भी क्षेत्र में जहां यह अधिनियम प्रवृत्त किया जाता है, राज्य सरकार या स्थानीय निकाय यह निदेश दे सकेगा कि कोई विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर जो इस अधिनियम के प्रारंभ पर कारावास का दंडादेश भोग रहा है, ऐसा दंडादेश भोगने की बजाय उस दंडादेश की अवशिष्ट कालावधि के लिए विशेष गृह को भेज दिया जाएगा या ऐसी संस्था में ऐसी रीति से रखा जाएगा जिसे राज्य सरकार या स्थानीय निकाय उचित समझे और इस अधिनियम के उपबंध किशोर को ऐसे लागू होंगे

मानो उसे बोर्ड द्वारा, यथास्थिति, ऐसे विशेष गृह या संस्था को भेजने का आदेश दिया गया हो या इस अधिनियम की धारा 16 की उपधारा (2) के अधीन संरक्षित देखरेख में रखने का आदेश दिया हो।"

59. अध्याय 2 में आने वाली धाराएं 4 से 28 विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के बारे में हैं और अध्याय 5 में आने वाली धारा 64 प्रकीर्ण उपबंधों के बारे में है । यहां यह उल्लेख करना हितप्रद है कि अध्याय 2 में आने वाले सभी उपबंधों अथवा धारा 20 में 'विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर' पद का प्रयोग नहीं किया गया है जबकि धारा 64 में विनिर्दिष्ट रूप से उस पद का प्रयोग किया गया है ।

60. अधिनियम की धारा 20 में यह उपबंधित करते हुए कि "किशोर न्यायालय ऐसे निष्कर्ष अभिलिखित करेगा और उस किशोर के बारे में कोई दंडादेश पारित करने के बजाय उस किशोर को बोर्ड को भेज देगा, जो उस किशोर के बारे में आदेश इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे करेगा मानो इस अधिनियम के अधीन जांच पर उसका समाधान हो गया है कि किशोर ने वह अपराध किया है," किसी क्षेत्र में उसको उस तारीख को, जिसको अधिनियम प्रवृत्त हुआ, कार्यवाहियां चालू रखने को अनुज्ञात किया गया है ।

61. धारा 68 में राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति का उपबंध किया गया है । दुर्भाग्यवश किसी भी राज्य द्वारा उसका प्रयोग किए जाने संबंधी कोई नियम नहीं बनाए गए हैं । तथापि, केन्द्रीय सरकार ने अधिनियम की धारा 70 के अधीन अपनी तात्पर्यित शक्ति का प्रयोग करते हुए उन सिद्धांतों को, जो युक्तियों के विकास, 2000 के अधिनियम के निर्वचन और कार्यान्वयन के लिए आधारभूत हैं, तथा उन आदर्श नियमों को प्रकाशित किया है जो राज्य सरकारों के लिए विरचित करना अपेक्षित है । उक्त आदर्श नियम का नियम 61 इस प्रकार है :–

> * "61. **आदर्श नियमों का अस्थायी रूप से लागू होना** – यह एतद्द्वारा घोषित किया जाता है कि जब तक अधिनियम की धारा 68 के अधीन संबंधित राज्य सरकार द्वारा नए नियम नहीं बनाए जाते तब तक ये नियम यथावश्यक परिवर्तन सहित उस राज्य में लागू होंगे ।"

62. नियम 62 लंबित मामलों के बारे में है और उसका उपनियम (3) इस प्रकार है :–

> ** "........यह एतद्द्वारा स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे फायदे न केवल उस अभियुक्त को, जो अपराध किए जाने के समय किशोर अथवा बालक था, उपलब्ध कराए जाएंगे बल्कि उनको भी उपलब्ध कराए जाएंगे जो किसी जांच या विचारण के लंबित रहने के दौरान किशोर अथवा बालक नहीं रह गया है ।"

63. किशोर न्याय से संबंधित विधान का अर्थान्वयन किशोर न्याय की उस समस्या के समाधान के उपाय के रूप में किया जाना चाहिए जो, एक करुण मानवीय हित की समस्या थी जो बाहय राष्ट्रों में भी देखने में आती हैं । उक्त अधिनियम का परिशीलन न केवल नियमों के निबंधनों के अनुसार किया जाना होगा बल्कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा तथा किशोरों की संरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम के निबंधनों के अनुसार किया जाना होगा ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "61.**Temporary application of model rules** – It is hereby declared that until the new rules are framed by the State Government concerned under section 68 of the Act, these rules shall *mutatis mutandis* apply in that State."

> ** "....... It is hereby clarified that such benefits shall be made available not only to those accused, who was juvenile or a child at the time of commission of an offence but also to those who ceased to be a juvenile or a child during the pendency of any enquiry or trial."

अंतरराष्ट्रीय विधि :

64. किशोर न्याय अधिनियम में विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय विधि के प्रति निर्देश किया गया है । नियमों के सुसंगत उपबंध उसमें सम्मिलित किए गए हैं । यद्यपि अंतरराष्ट्रीय संधियां, प्रसंविदाएं और अभिसमय हमारी राष्ट्रीय (देशीय) विधि का भाग नहीं हो सकतीं, तथापि, न्यायालयों द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत उक्त संधियों का एक पक्षकार है, उनके प्रति निर्देश और उनका अनुसरण किया जा सकता है । शीघ्र विचारण का अधिकार कोई नया अधिकार नहीं है । यह हमारे संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के निबंधनानुसार उसमें सन्निविष्ट है । अंतरराष्ट्रीय संधियों में इसे स्वीकार किया गया है । अब यह सामान्य बात है कि मानव अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है । अंतरराष्ट्रीय विधि के कुछ उपबंध, हो सकता है, हमारी देशीय विधि का भाग न हों तथापि न्यायालय उनके प्रति निर्देश करने में संकोच नहीं करते जिससे कि संविधान के संदर्भ में नए अधिकारों का पता लगाया जा सके । भारत के संविधान और अन्य प्रवृत्त कानूनों का परिशीलन निरंतर अंतरराष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुरूप किया जा रहा है । संविधान विधायी शक्ति का स्रोत है न कि उसका कोई प्रयोग । अंतरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांत, जब कभी लागू हों, कानूनी विवक्षा के रूप में प्रवृत्त होते हैं किन्तु विधायिका ने, वर्तमान मामले में, अपने को तद्द्वारा आबद्धकर माना है और इस प्रकार उसने सांविधानिक विधि या अंतरराष्ट्रीय विधि की तथा भारत संविधान के अनुच्छेद 20 और अनुच्छेद 21 के संदर्भ में उसकी अनदेखी करके विधान (विधि) नहीं बन. अतः विधि को अंतरराष्ट्रीय विधि के अनुसार समझा जाना चाहिए । हमारे संविधान के भाग 3 में सारभूत और साथ ही प्रक्रियात्मक अधिकारों की संरक्षा का उपबंध है । उससे जो विवक्षाएं उद्भूत होती हैं उनका न्यायपालिका द्वारा प्रभावी तौर पर संरक्षण किया जाना चाहिए । कानून को सांविधानिक विधि के साथ-साथ उस क्षेत्र में प्रवर्तित अंतरराष्ट्रीय विधि को ध्यान में रखते हुए प्रासंगिक अर्थ दिया जाना चाहिए ।

[**लिवरपूल एंड लंदन एस. पी. एंड आई. एसोसिएशन लिमिटेड** बनाम **एम. वी. सी. सक्सेस आई. एंड अनदर**[1] वाला मामला देखिए]

65. **रेगिना (डेली)** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार दि होम डिपार्टमेंट**[2] वाले मामले में लार्ड स्टेइन ने यह मत व्यक्त किया कि विधि में संदर्भ ही सब कुछ होता है । जो मत व्यक्त किया गया वह इस प्रकार है :–

> "28. अतः पुनर्विलोकन के पारम्परिक आधारों के और अनुपातिकता के दृष्टिकोण के मध्य की भिन्नता से कभी-कभी भिन्न-भिन्न परिणाम निकल सकते हैं । अतः यह महत्वपूर्ण है कि उन मामलों का, जिनमें कनवेंशन-अधिकार अंतर्वलित हों, सही रूप में विश्लेषण किया जाना चाहिए । इससे यह अभिप्रेत नहीं होता कि पुनर्विलोकन के गुणागुण में कोई बदलाव आया है । इसके विपरीत, जैसा कि प्रोफेसर जोवेल द्वारा [2000] पी. एल. 671, 681 वाले मामले में यह बताया है कि न्यायाधीशों और प्रशासकों की अपनी-अपनी भूमिकाएं मूलभूत रूप से भिन्न हैं और वे ऐसे ही रहेंगी । इस सीमा तक महमूद वाले मामले में [(2001) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 840] की मताभिव्यक्तियों का सामान्य आशय सही है और महमूद वाले मामले में न्यायमूर्ति लाज़ एल. ने इस बात पर उचित तौर पर बल दिया है कि 'किसी लोक विधि के मामले में पुनर्विलोकन की प्रबलता विचाराधीन मामले की विषयवस्तु पर निर्भर करेगी' । ऐसा कन्वेंशन अधिकारों वाले मामलों में भी होता है । विधि में संदर्भ ही सब कुछ है ।"

66. भारत के संविधान तथा किशोर न्याय विधान को अनिवार्यतः वर्तमान के परिदृश्य के संदर्भ में और अंतरराष्ट्रीय संधियों तथा अभिसमयों (कन्वेशनों) को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए । हमारे संविधान में विश्व समुदाय की उन संस्थाओं को, जिनका सृजन किया जा चुका है, दृष्टिगत रखा गया है । कुछ

---

[1] (2004) 9 एस. सी. सी. 512.

[2] (2001) 2 ए. सी. 532.

विधिक लिखतों को जिनमें मानव अधिकारों तथा मूलभूत मानवीय स्वतंत्रताओं की घोषणा है, अंगीकार किया गया है किन्तु समय के साथ-साथ अनेक देशों यथा दक्षिण अफ्रीका (**एस.** बनाम **मैक्वानएनं**[1]) कनाडा [**पब्लिक सर्विस एम्पलाई रिलेशन्स ऐक्ट (अल्बेटा) वाले मामले में निर्देश**[2]] जर्मनी (**प्रिजम्पशन आफ इनोसेंस एंड दि यूरोपियन कन्वेंशन आन ह्यूमन राइट्स**[3]) न्यूजीलैंड (**टविटा** बनाम **मिनिस्टर आफ इमिग्रेशन**[4]) यूनाइटेड किंगडम (**प्रार** बनाम **अटर्नी जनरल फार जमैका**[5]) और यूनाइटेड स्टेट्स (**एटकिन्स** बनाम **विर्जिनिया**[6] तथा **लारेंस** बनाम **टैक्सास**[7]) में नवीन अधिकार भी सामने आए हैं । मानव मस्तिष्क में मानव अधिकारों की संरक्षा से संबंधित नए विचार घर कर गए हैं । (**हमदी** बनाम **रम्सफेल्ड**[8], **रस्सेल** बनाम **बुश**[9] और **रम्सफेल्ड** बनाम **पेडिला**[10] वाले मामले देखिए) ।

67. अब, संविधान में न केवल भारत के उन लोगों का, जिन्होंने अपने शासन के लिए इसे बनाया और स्वीकार किया, बल्कि भारतीय राष्ट्र की आधारभूत विधि के रूप में उस अंतरराष्ट्रीय समुदाय का भी वर्णन है क्योंकि भारत उस समुदाय का एक सदस्य है । अनिवार्यतः, इसका अर्थ उस विधिक संदर्भ द्वारा प्रभावित होता है, जिसमें कि यह प्रवर्तित होना चाहिए ।

68. वे विधिक विलेखें, जिनमें विधिक अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं की घोषणा की गई है, जो मानवीय गरिमा वाली धारणाओं में तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर (चार्टर आफ यूनाइटेड नेशन्स) में पाई जाती हैं, उनके बारे में पहले कुछ भी ज्ञात नहीं था और जो आज प्रत्यक्ष दिखाई देता है । [संयुक्त राष्ट्र चार्टर, जिस पर 26 जून, 1945 को हस्ताक्षर किए गए थे, उद्देशिका] । राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास संविधान के अर्थ पर प्रकाश डाल सकता है ।

69. **लारेंस** वाले (उपर्युक्त) मामले में, सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति केनेडी ने अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार विधि के प्रति निर्देश करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि :–

> "यदि उन लोगों को, जिन्होंने पांचवें संशोधन अथवा चोदहवें संशोधन के सम्यक् प्रक्रिया संबंधी खंडों (ड्यू प्रोसेस कलाज़ेज़) को तैयार किया और उसका अनुसमर्थन किया, स्वतंत्रता की बहुविध संभाव्यताओं के संघटकों का पता होता, तो वे और अधिक विनिर्दिष्ट हो सकते थे । उन्होंने इस अंतर्दृष्टि की उपधारणा नहीं की थी । वे जानते थे कि संभवतः हम कतिपय सच्चाइयों को नज़रअंदाज कर दें और बाद में आने वाली पीढ़ियां यह पाएं कि जिन विधियों को एक समय आवश्यक और उचित समझा गया था वे वस्तुतः केवल दमनकारी हैं । जैसाकि संविधान में विहित है, प्रत्येक पीढ़ी के व्यक्ति अत्यधिक स्वतंत्रता की अपनी स्वयं की खोज में इसके सिद्धांतों का अवलंब ले सकते हैं ।"

अतः इन प्रश्नों का अवधारण, हमारी राय में, ऊपर वर्णित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

शीघ्र कार्यवाहियां :

70. नियमों के नियम 20.1. के निबंधनों के अनुसार यह ध्यात्वय हैं कि कुछ कानूनों का, जैसे कि

---

[1] (1995) 3 एस. ए. 391.
[2] [1987] 1 एस. सी. आर. 313 (कनाडा).
[3] (1987) बी. वर्फ जी. ई. 74.
[4] (1994) 2 एन. जैड. एल. आर. 257.
[5] (1994) 2 ए. सी. 1.
[6] (2002) 536 यू. एस. 304.
[7] (2003) 539 यू. एस. 558.
[8] (2004) 72 यू. एस. एल. डब्ल्यू. 4607.
[9] (2004) 72 यू. एस. एल. डब्ल्यू. 4596.
[10] (2004) 72 यू. एस. एल. डब्ल्यू. 4584.

उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों के कुटुंब न्यायालय अधिनियम (फैमिली कोर्ट ऐक्ट) में किशोर संबंधी कार्यवाहियों के प्रत्येक प्रक्रम को लागू होने वाली समय-परिसीमा निश्चित करने संबंधी उपबंध अंतर्विष्ट हैं, प्रयोजन कार्यवाही के सभी प्रक्रमों में शीघ्रता से तथा निश्चित रूप से न्यायनिर्णयन को आश्वस्त करने का है । (देखिए **फ्रेंक सी**[1] वाला मामला)

71. ऐसे ही एक मुद्दे पर कैलिफोरनिया के सुप्रीम कोर्ट द्वारा **अल्फ्रेडो** बनाम **सुपीरियर कोर्ट**[2] वाले मामले में परीक्षा की गई थी, जिसमें एक किशोर ने छोड़े जाने का आदेश प्राप्त करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कार्पस) की रिट की ईप्सा की थी । न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि चौथे संशोधन में किसी किशोर की सुनवाई के लिए प्राधिकारी को अपेक्षित तत्परता बरतने का उपबंध किया गया है । यह और अभिनिर्धारित किया गया कि किसी अवयस्क को निरोध की कानूनी समय-सीमा को समाप्त होने पर किशोर के संस्थागत अवरोधों से स्वतंत्र होने के हित को देखते हुए छोड़ दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने यह सूचित किया कि जब एक बार किशोर को छोड़ दिया जाता है तो सुनवाई करने के लिए अनुज्ञात समय विस्तारित हो जाएगा और यह कि (वाद) खारिज किया जाना ही कोई आवश्यक उपचार नहीं है ।

72. **रोबिन्सन** बनाम **टैक्सास**[3] वाले मामले में टैक्सास अपील न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि शीघ्र विचारण के लिए समय की गणना करने में कार्यवाही जारी रहने की कालावधियों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए । उस मामले में न्यायालय का निष्कर्ष यह था कि अपीलार्थी के अटर्नी द्वारा पुनः ठीक करने संबंधी हस्ताक्षरित प्ररूपों के आधार पर कार्यवाही जारी रहने की कालावधियां शीघ्र विचारण के लिए कानूनी समय-सीमा में सम्मिलित नहीं की जा सकतीं ।

73. **इलिनोइस** बनाम **स्टफलबीन**[4] वाले मामले में इलिनोइस के अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी किशोर का कानूनी समय सीमा से परे निरोध का जो उपचार है वह है उसे तत्काल छोड़ा जाना न कि (वाद का) खारिज किया जाना । **स्टफलबीन**[4] वाले मामले में, न्यायालय ने कानूनी सीमा से अधिक अवधि तक कारावास में रखे जाने के आधार पर परिवीक्षाधीन व्यक्ति के (वाद के) खारिज किए जाने संबंधी अनुरोध को स्वीकार नहीं किया था ।

प्रश्न :

74. इस निर्देश में जो प्रश्न उद्भूत हुए हैं, वे इस प्रकार हैं :–

(i) अपराधी की आयु का अवधारण करने में गणना की तारीख क्या होगी अर्थात् वह तारीख, जब उसे न्यायालय में पेश किया जाता है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **अरनित दास** बनाम **बिहार राज्य**[5] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है अथवा वह तारीख जिसको कि अपराध किया गया था, जैसा कि **उमेश चन्द्र** बनाम **राजस्थान राज्य**[6] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

(ii) क्या 2000 का अधिनियम उन मामलों में लागू होगा जो कि उसके प्रवृत्त होने की तारीख के पूर्व लंबित पड़े हुए थे ।

प्रश्न सं. (i) के बारे में :

---

1 70 एन. वाई 2 डी. 408.

2 849 पी. 2 डी. 1330 (कैलि.1993).

3 707 एस. डब्ल्यू. 2 डी. 47.

4 392 एन. ई. 2 डी. 417.

5 (2000) 5 एस. सी. सी. 488.

6 [1983] 1 उम. नि. प. 603 = (1982) 2 एस. सी. सी. 202.

75. हम इसमें इसके पूर्व यह अवेक्षा कर चुके हैं कि **उमेश चन्द्र** वाले (उपर्युक्त) मामले में तथा **अरनित दास** वाले (उपर्युक्त) मामले में किए गए विनिश्चय एक दूसरे के परस्पर विरोध में हैं । इस न्यायालय द्वारा **उमेश चन्द्र** वाले (उपर्युक्त) मामले में यह स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है कि अधिनियम के लागू होने की सुसंगत तारीख वह तारीख होती है जिस तारीख को अपराध कारित होता है; जबकि **अरनित दास** वाले उपर्युक्त मामले में न्यायमूर्ति लाहोटी (जैसे कि माननीय मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे) ने खंड न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 8(क) और स्कीम तथा अधिनियम का प्रारूप तैयार करने में संसद् द्वारा प्रयुक्त वाक्य रचना से भी यह पता चलता है कि किशोर की आयु का पता लगाने के लिए सुसंगत तारीख वह तारीख है जब उसे (किशोर को) बोर्ड के समक्ष पेश किया जाता है । यह मत व्यक्त किया गया था कि निर्विवाद रूप से अधिनियम में अंतर्विष्ट किशोर की परिभाषा में या किसी भी अन्य उपबंध में विनिर्दिष्ट रूप से उस तारीख का उपबंध नहीं किया गया है जिसके प्रति निर्देश करके अपराध का अवधारण किया जाना होता है जिससे कि यह पता लगाया जा सके कि वह किशोर है अथवा नहीं ।

76. **अरनित दास** वाले (उपर्युक्त) मामले में अपनाए गए मत के समर्थन में प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महासालिसिटर ने यह निवेदन किया कि अधिनियम का उद्देश्य इस अर्थ में किशोर की संरक्षा करने का है कि उसे संरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाए और उसे कारावास या पुलिस हवालात में न भेजकर उसके संबंध में पृथक् रूप से कार्यवाही की जाए जो कि केवल उस दशा में संभव है जब किशोर को गिरफ्तार किया जाए और न्यायालय में पेश किया जाए न कि उसके पूर्व । इसी प्रकार, दोषसिद्ध किए जाने पर उसे दंडादिष्ट नहीं किया जा सकता और उसे संरक्षा गृह में रखे जाने का निदेश दिया जा सकता है, इस प्रकार सुसंगत तारीख वह होगी जिस तारीख को अपचारी किशोर को बोर्ड के समक्ष पेश किया जाता है ।

77. इस दलील को अनेक कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता । उक्त अधिनियम न केवल एक कल्याणकारी विधान है बल्कि एक उपचारात्मक विधान भी है । अधिनियम का उद्देश्य वयस्क अपराधियों के मुकाबले किशोर की देखरेख, संरक्षा और पुनर्वास प्रदान करने का है । संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम के नियम 4 को ध्यान में रखते हुए यह भी अवश्य ही स्मरण रखना चाहिए कि आपराधिक उत्तरदायित्व का नैतिक और मनोवैज्ञानिक संघटक भी किशोर को परिभाषित करने का एक कारक था । अत: पहला उद्देश्य किशोर के हित की अभिवृद्धि करना है और दूसरा उद्देश्य आनुपातिकता के सिद्धांत को लाना है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपराधी और अपराध दोनों की, जिसके अंतर्गत आहत व्यक्ति भी है, परिस्थितियों की प्रतिक्रिया की आनुपातिकता की रक्षा की जानी चाहिए । सार रूप में, नियम 5 में किशोर अपचारिता और अपराध के किसी विशेष मामले में ऋजु प्रतिक्रिया से कुछ कम और उससे कुछ अधिक की अपेक्षा नहीं की गई है । किसी कानून में उसकी उस प्रकृति के कारण "किशोर" पद का अर्थ किसी निश्चित तारीख के प्रति निर्देश करते हुए किया जाना चाहिए । "किशोर" पद को एक निश्चित अर्थ प्रदान किया जाना चाहिए । कोई व्यक्ति एक प्रयोजन के लिए किशोर और दूसरे प्रयोजन के लिए वयस्क नहीं हो सकता । सांविधानिक और कानूनी स्कीम को ध्यान में रखते हुए संसद् के लिए विनिर्दिष्ट रूप से कथन करना आवश्यक नहीं था कि किशोर की आयु का अवधारण अपराध किए जाने की तारीख से ही किया जाना चाहिए । यही कानूनी स्कीम में अंतर्निहित है । कानून का अर्थान्वयन स्कीम तथा साधारण क्रियाकलापों और उससे निकलने वाले परिणामों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । आधुनिक दृष्टिकोण इस बात पर विचार करने का है कि क्या कोई बालक आपराधिक उत्तरदायित्व के नैतिक और मनोवैज्ञानिक संघटकों के अनुसार परिपक्व है अर्थात् क्या किसी बालक को अपने व्यक्तिगत विवेक और समझ के आधार पर वस्तुत: समाज विरोधी व्यवहार के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है ।

78. दंड संबंधी किसी कानून का अर्थान्वयन करने में, विधि के उद्देश्य को स्पष्टतया ध्यान में रखना चाहिए। किसी किशोर द्वारा अभिकथित रूप से किए गए किसी अपराध के संबंध में समयबद्ध अन्वेषण और विचारण का महत्व सुस्पष्ट है जैसाकि इसमें इसके पूर्व कुछ विस्तारपूर्वक इसकी चर्चा की गई है । अन्वेषण करते समय यह प्रत्याशा की जाती है कि अभियुक्त को तुरंत गिरफ्तार किया जाए । उसको गिरफ्तार किए जाने पर यदि वह किशोर प्रतीत होता है तो उसे पुलिस अभिरक्षा में नहीं रखा जाए और उसे जमानत पर छोड़ा जाए । यदि उसे गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी द्वारा जमानत पर छोड़ा नहीं जाता है तो उसे सक्षम न्यायालय अथवा बोर्ड के समक्ष पेश किया जाना चाहिए । जब एक बार यह प्रतीत हो जाता है कि वह किशोर है तो सक्षम न्यायालय और/अथवा बोर्ड उसे जमानत पर छोड़े जाने अथवा उसे संरक्षात्मक अभिरक्षा में भेजे जाने का समुचित आदेश पारित कर सकेगा । यदि पेश किए गए व्यक्ति के बारे में यह स्वीकृत है कि वह किशोर है तो किशोर की आयु के अवधारण के प्रयोजन के लिए जांच का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं होती । जांच केवल उस दशा में आवश्यक होगी यदि उस निमित्त कोई विवाद उठाया जाए। अतः, सक्षम न्यायालय और/या बोर्ड द्वारा विनिश्चय अभियुक्त की इस प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि क्या उसे जमानत पर छोड़ा जाए या किसी संरक्षात्मक अभिरक्षा में भेजा जाए अथवा पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जाए । उक्त प्रयोजन के लिए, जो आवश्यक है वह है इस बात का पता लगाना कि क्या अपराध किए जाने की तारीख को वह किशोर था अथवा नहीं क्योंकि अन्यथा वह प्रयोजन, जिसके लिए अधिनियम अधिनियमित किया गया था, निष्फल हो जाएगा । उक्त अधिनियम के उपबंधों में, जैसाकि इसमें इसके पूर्व उपदर्शित किया गया है, स्पष्ट रूप से यह अनुध्यात है कि कार्यवाहियों में आवश्यक कदम, न केवल आरंभिक प्रक्रम पर किसी विशेष कार्यवाही को अंगीकार करने के प्रयोजन के लिए उठाए जाने की अपेक्षा होती है बल्कि कार्यवाहियों के मध्यवर्ती और अंतिम प्रक्रम पर भी उठाए जाने की अपेक्षा होती है । यदि संबंधित व्यक्ति किशोर है, तो उसका वयस्क अभियुक्त के साथ विचारण नहीं किया जा सकता । उसका विचारण बोर्ड द्वारा पृथक् रूप से किया जाना चाहिए । नियमों के नियम 20.1 को ध्यान में रखते हुए उसके मामले का अवधारण बिना किसी अनावश्यक विलंब के किए जाने की अपेक्षा होती है । विचारण में, किशोर की एकांतता से संबंधित उसके अधिकार की अवश्य ही संरक्षा की जानी चाहिए । वह किसी विधिक सलाहकार द्वारा उसका प्रतिनिधित्व किए जाने का तथा निःशुल्क विधिक सहायता पाने का, यदि वह उसके लिए आवेदन करता है, हकदार है । उसके माता-पिता और/या संरक्षक भी कार्यवाहियों में भाग लेने के हकदार हैं । न्यायालय सामाजिक जांच रिपोर्टों पर, जिसमें उस पृष्ठभूमि और परिस्थितियों की जिसमें कि किशोर रह रहा था और उस स्थिति की, जिसमें अपराध किया गया था, समुचित रूप से जांच की जा सकती है जिससे कि किशोर को समुचित प्राधिकारी द्वारा मामले का न्यायनिर्णयन कराए जाने के लिए सुकर बनाया जा सके । सभी प्रक्रमों पर, न्यायालय/बोर्ड से यथाशीघ्र समुचित आदेश पारित किए जाने की अपेक्षा की जाती है । किशोर का अपने मामले का शीघ्रतापूर्वक निपटारा कराने का अधिकार कानूनी अधिकार होने के साथ-साथ सांविधानिक अधिकार भी है ।

79. अंतिम प्रक्रम पर भी अर्थात् उसको अपराध कारित करने का दोषी पाए जाने के पश्चात् भी उसके संबंध में वयस्क बंदियों के संबंध में की जाने वाली कार्रवाई से भिन्न रूप में कार्रवाई की जानी चाहिए । मात्र इस कारण कि किसी विवाद की दशा में उसकी आयु का अवधारण अधिनियम की धारा 26 के निबंधनों के अनुसार सक्षम न्यायालय अथवा बोर्ड द्वारा किया जाता है, इससे यह अभिप्रेत नहीं होता कि उसके लिए सुसंगत तारीख वह तारीख होगी जिसको उसे बोर्ड के समक्ष पेश किया जाता है । यदि ऐसी किसी दलील को स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे बेतुका परिणाम सामने आएगा जैसे कि किसी मामले विशेष में पुलिस अधिकारी उसे उसके किशोर न रहने से पूर्व ही बोर्ड के समक्ष पेश न करने के लिए स्वतंत्र होंगे । यदि उसे उसके किशोर न रहने के पश्चात् पेश किया जाता है तो बोर्ड के लिए उसे संरक्षात्मक अभिरक्षा में भेजना या उसे जमानत पर छोड़ना आवश्यक नहीं होगा, जिसका परिणाम यह होगा कि उसे

न्यायिक या पुलिस अभिरक्षा में भेजा जाएगा, जिससे वह प्रयोजन निष्फल हो जाएगा जिसके लिए अधिनियम अधिनियमित किया गया था । विधि को किसी अनिश्चित स्थिति में लागू नहीं किया जा सकता । इसके अलावा, अधिनियम के निबंधनों के अनुसार कड़ाईपूर्वक ऋजु विचारण कराए जाने का अधिकार, जिसके अंतर्गत प्रक्रियात्मक रक्षोपाय भी है, किशोर का एक मूल अधिकार है । किशोर के विरुद्ध कार्यवाही अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप होनी चाहिए ।

80. **दिलीप साहा बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने इस निष्कर्ष पर पंहुचने में कि गणना की तारीख वह तारीख होगी जिसको अपराध किया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 को निम्नलिखित रूप में निर्दिष्ट किया :–

> "22. यदि हम धारा 28 का निर्वचन इस अर्थ के रूप में करते हैं कि इसमें किसी बालक और किसी वयस्क का, केवल उस दशा में जब वह बालक विचारण के समय 'बालक' हो, संयुक्त रूप से विचारण किए जाने को प्रतिषिद्ध किया गया है, तो इस प्रकार का निर्वचन संविधान के अनुच्छेद 20(1) के उपबंधों के विरुद्ध होगा जिसमें यह विहित है कि कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी ।"

हम सादर उक्त मताभिव्यक्ति से सहमति व्यक्त करते हैं ।

81. यह सुविदित है कि कानून का अर्थान्वयन ऐसी रीति में किया जाना चाहिए जिससे कि उसे अमान्य से मान्य करना अच्छा है (Ut res magis valeat quam pereat) के सिद्धांत पर प्रभावी और प्रवृत्त बनाया जा सके । न्यायालय ऐसे किसी अर्थान्वयन के बहुत अधिक पक्ष में नहीं है जो किसी कानून को निरर्थक (प्रभावहीन) बनाता हो । जब दो अर्थ दिए गए हों, एक अर्थ जो कानून को पूर्णतया संदिग्ध, पूर्णतया पेचीदा तथा सर्वथा निरर्थक बनाता हो और दूसरा अर्थ निश्चितता प्रदान करता हो तथा अर्थपूर्ण हो तो उस दशा में दूसरे वाले अर्थ को अपनाया जाना चाहिए [**तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड** बनाम **असम राज्य और अन्य**[2], **आंध्रा बैंक** बनाम **बी. सत्यनारायण और अन्य**[3] और **इंडियन हैंडिक्राफ्ट्स एम्पोरियम और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4] वाले मामले देखिए] ।

82. विद्वान् अपर महासालिसिटर की इस दलील में कि इस न्यायालय ने **उमेश चन्द्र** वाले (उपर्युक्त) मामले में यह अभिनिर्धारित करने में आपराधिक मन:स्थिति अभ्यारोपित करने की कसौटी को गलत रूप में लागू किया है कि बालक अधिनियम युवा बालकों को उनके आपराधिक कार्यों के परिणामों से इस आधार पर संरक्षा करने के लिए अधिनियमित किया गया था कि उस आयु में उनके मस्तिष्क को परिपक्व नहीं कहा जा सकता जैसाकि वयस्क के मामले में होता है, कुछ सार हो सकता है किंतु विधि के उक्त कथन को नियमों के नियम 4.1. के संदर्भ में पढ़ा और समझा जाना चाहिए । इस प्रकार परिशीलन किए जाने पर अधिनियम को उसके उचित परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है ।

83. **अरनित दास** वाले (उपर्युक्त) मामले के पैरा 17 में जो प्रश्न उठाया गया था वह उपयुक्त नहीं है । काल्पनिक प्रश्न का उत्तर केवल काल्पनिक ही होगा । किसी समुचित मामले में न्यायालय कोई आदेश पारित करने के लिए शक्तिहीन नहीं होता, जैसाकि कानून के अधीन अनुध्यात है, यदि स्थिति की ऐसी मांग

---

[1] ए. आई. आर. 1978 कलकत्ता 529.

[2] (1989) 3 एस. सी. सी. 709.

[3] (2004) 2 एस. सी. सी. 657.

[4] (2003) 7 एस. सी. सी. 589.

हो किन्तु मात्र इस कारण कि किसी व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष या तो उसके स्वयं के इच्छा से या अन्वेषण अभिकरण द्वारा अपनाए गए षड्‌यंत्र के कारण उसके वयस्क होने के पश्चात् पेश किया जाता है तो वह इस तथ्य का अवधारक नहीं होगा कि उक्त व्यक्ति के संबंध में भिन्न रूप में कार्रवाई की जाए । विधि उचित अपवादों के अधीन रहते हुए प्रक्रियाओं का कड़ाईपूर्वक पालन किए जाने की अपेक्षा करती है । न्यायालय ने **अरनित दास** वाले (उपर्युक्त) मामले में यह मत व्यक्त किया कि :–

> "16. अधिनियम की उद्देशिका में पश्च-अपचारिता संबंधी बातों के लिए उपबंध करने का उल्लेख है । उद्देश्यों और कारणों के कथन में प्रयुक्त अनेक पदों में इस दृष्टिकोण का मौखिक रूप से समर्थन किया गया है । अधिनियम का उद्देश्य देश में किसी बालक को जेल अथवा पुलिस हवालात में डाले जाने का परिहार करने संबंधी एक समान किशोर न्याय पद्धति को अधिकथित करने और किशोर अपचारिता के निवारण और उपचार के लिए, पश्च-किशोर अवस्था में देखभाल, संरक्षा आदि के लिए उपबंध करने का है । संक्षेप में इस अधिनियम में जो क्षेत्र सम्मिलित करने की ईप्सा की गई है ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें किशोर अपचारिता के संबंध में उपबंध है बल्कि ऐसा क्षेत्र है कि जब किसी किशोर द्वारा अपचार किए जाने पर उसे पश्च-अपचारिता की देखभाल करने के लिए रखा जाता है ।"

84. हम विधि के उक्त कथन से ससम्मान सहमत नहीं हैं । यह कहना सही नहीं है कि उद्देशिका में केवल पश्च-अपचारिता की बातों का उल्लेख है । अधिनियम में न केवल किशोरों से संबंधित विद्यमान विधि को पुनः अधिनियमित करने की देश की बाध्यताओं के प्रति विभिन्न कन्वेंशनों (अभिसमयों) में विहित स्तरों को ध्यान में रखते हुए निर्देश किया गया है बल्कि अन्य सभी अंतरराष्ट्रीय लिखतों के प्रति भी निर्देश किया गया है । इसमें यह कथन है कि उक्त अधिनियम अन्य बातों के साथ-साथ किशोरों से संबंधित विधि का समेकन करने तथा संशोधन करने के लिए अधिनियमित किया गया है । विधि के अपचारी किशोरों या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों से संबंधित होने पर उससे यह अभिप्रेत होता है कि वह पूर्व और पश्च दोनों अपचारिताओं से संबंधित है ।

85. 1986 के अधिनियम के अधीन "किशोर" की परिभाषा में निस्संदेह ऐसे व्यक्ति के प्रति निर्देश है जिसके बारे में यह पाया जाता है कि उसने अपराध किया है किन्तु इसे 2000 के अधिनियम में स्पष्ट किया गया है । 1986 के अधिनियम के उपबंधों में, जैसी कि इसमें इसके पूर्व अवेक्षा की गई है, न केवल ऐसे किशोरों की संरक्षा किए जाने की ईप्सा की गई है जिनके बारे में यह पाया जाता है कि उन्होंने अपराध किया है बल्कि उन किशोरों की संरक्षा किए जाने की भी ईप्सा की गई है जिनको कि उन अपराधों के लिए आरोपित किया गया है । 1986 के अधिनियम की धारा 3 तथा 2000 के अधिनियम की भी धारा 3 के निबंधनों के अनुसार, जब जांच आरंभ की जा चुकी है भले ही वह किशोर किशोर न रहा हो क्योंकि उसने यथास्थिति 16 वर्ष और 18 वर्ष की आयु पार कर ली है, तो भी वह जांच ऐसे व्यक्ति की बाबत जारी रहनी चाहिए मानो कि वह किशोर ही बना हुआ है । अतः, 1986 के अधिनियम की धारा 3 को तब प्रभावी रूप नहीं दिया जा सकता यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह केवल किशोर की, पश्च अपचारिता के प्रति ही लागू होती है ।

86. अधिनियम के क्षेत्रांतर्गत ऐसी स्थिति आती है जो किशोर की अपचारिता को किसी अपराध के किए जाने से जोड़ती है । ऐसी किसी दशा में उसकी पश्च अपचारिता देखभाल की जानी चाहिए और उक्त प्रयोजन के लिए अपचार होने की तारीख सुसंगत तारीख होगी । अतः, यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि किशोर की आयु का अवधारण किए जाने के लिए सुसंगत तारीख वह तारीख होगी जिस तारीख को अपराध किया गया है न कि वह तारीख जिसको उसे न्यायालय में पेश किया जाता है ।

प्रश्न सं. (ii) के मामले में :

87. 2000 के अधिनियम के प्रमुख लक्षणों की प्रारंभ में ही अवेक्षा करना उपयोगी होगा ।

88. 2000 के अधिनियम की धारा 1(3) में यह कथित है कि वह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे । केन्द्रीय सरकार द्वारा उसके निबंधनों के अनुसार एक समुचित अधिसूचना जारी की गई थी; तारीख 1 अप्रैल, 2001 को 'नियत तारीख' विनिर्दिष्ट किया गया जिससे कि उक्त अधिनियम के उपबंध प्रवर्तन में आएंगे । इस प्रकार, यह अधिनियम भविष्यलक्षी रूप से प्रवर्तन में आया । तथापि 2000 के अधिनियम द्वारा 1986 के अधिनियम को निरसित कर दिया गया है । इस अधिनियम द्वारा भिन्न-भिन्न लिंग के किशोर के बीच के विभेद को समाप्त कर दिया गया है जिसके कारण पुरुष किशोर भी किशोर होगा यदि उसने 18 वर्ष की आयु पार नहीं की है ।

89. 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार 16 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति किशोर नहीं था । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए इस प्रश्न का कि 16 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति 2000 के अधिनियम के परिक्षेत्र में किशोर है अथवा नहीं, उत्तर उसके उद्देश्य और तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए ।

90. 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार, ऐसे व्यक्ति का, जो किशोर नहीं है, किसी भी न्यायालय में विचारण किया जा सकता था । 2000 के अधिनियम की धारा 20 में ऐसी ही एक स्थिति का उल्लेख है जिसमें यह कथन है कि ऐसी स्थिति के होते हुए भी विचारण की कार्यवाही उस न्यायालय में उसी प्रकार जारी रहेगी मानो कि वह अधिनियम पारित ही नहीं किया गया है और उस दशा में यदि उसे कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है तो उस आशय का निष्कर्ष दोषसिद्धि के निर्णय में, यदि कोई हो, अभिलिखित किया जाएगा किन्तु किशोर के संबंध में कोई दंडादेश पारित किए जाने के बजाय उसे बोर्ड के समक्ष पेश किया जाएगा और यदि बोर्ड का जांच किए जाने पर यह समाधान हो जाता है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह अधिनियम के उपबंधों के अनुसार आदेश पारित करेगा । इस प्रकार उक्त उपबंध में विधिक कल्पना का सृजन किया गया है । किसी विधिक कल्पना को, जैसा कि सुविदित है, पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए भले ही उसकी अपनी परिसीमाएं हैं [**भावनगर विश्वविद्यालय** बनाम **पालितना शुगर मिल (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य**[1], **आई. टी. डब्ल्यू. साइनोड इंडिया लिमिटेड** बनाम **कलक्टर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क**[2] और **अशोक लेलैंड लिमिटेड** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य**[3] वाले मामले देखिए] ।

91. "मानो" '(यदि........तो)' पद के आशय पर हाल ही के **मैसर्स मारूति उद्योग लिमिटेड** बनाम **राम लाल**[4] वाले मामले में विचार किया गया था ।

92. इस प्रकार, विधिक कल्पना के कारण किसी व्यक्ति को, भले ही वह किशोर नहीं है, दंडादिष्ट किए जाने के प्रयोजन के लिए बोर्ड द्वारा किशोर ही माना जाना चाहिए, इसमें इस स्थिति का उल्लेख किया गया है कि उस व्यक्ति को, भले ही वह 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार किशोर नहीं है, 2000 के अधिनियम के अधीन उक्त सीमित प्रयोजन के लिए किशोर ही माना जाए । अधिनियम में हितप्रद परिणामों का उपबंध किया गया है, अतः इसका अर्थान्वयन उदारतापूर्वक ही किए जाने की अपेक्षा की जाती है ।

93. हम इस प्रतिपादना को नहीं भूले कि किसी फायदाप्रद विधान का अर्थान्वयन इतनी उदारतापूर्वक नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि उसके क्षेत्रांतर्गत ऐसा कोई व्यक्ति आ जाए जो कि कानूनी स्कीम के अंतर्गत नहीं आता [**दीपल गिरीशभाई सोनी और अन्य** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड,**

---

[1] (2003) 2 एस. सी. सी. 111.

[2] (2004) 3 एस. सी. सी. 48 = (2003) 9 स्केल 720.

[3] (2004) 3 एस. सी. सी. 1.

[4] (2005) 2 एस. सी. सी. 638.

बड़ौदा[1] वाला मामला, देखिए] ।

94. तथापि, जैसाकि 2000 के अधिनियम के उपबंधों से प्रतीत होता है, 2000 के अधिनियम की स्कीम ऐसी है कि उसमें ऐसा अर्थान्वयन संभव है । ऐसा ही धारा 64 से भी, जो कि ऐसे मामले के संबंध में है जहां कि कोई व्यक्ति दंड भोग रहा है, प्रकट होता है किन्तु यदि वह 2000 के अधिनियम के अर्थातर्गत ऐसा किशोर है जिसने 18 वर्ष की आयु पार नहीं की है तो उस अधिनियम के उपबंध इस रूप में लागू होंगे मानो कि उसे बोर्ड द्वारा उसे, यथास्थिति, विशेष गृह या संस्था में भेजे जाने का आदेश दिया गया है ।

95. अत: 2000 के अधिनियम की धारा 20 तब लागू होगी जब कोई व्यक्ति तारीख 1 अप्रैल, 2001 को 18 वर्ष से कम आयु का है । अधिनियम की धारा 20 को लागू करने के प्रयोजन के लिए यह अवश्य ही सिद्ध किया जाना चाहिए कि : (i) अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख को वे कार्यवाहियां, जिनमें याची अभियुक्त था, लंबित पड़ी हुई थीं, और (ii) वह उस तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का था । उक्त अधिनियम के प्रयोजन के लिए, ऊपर वर्णित दोनों ही शर्तों को पूरा किए जाने की अपेक्षा की जाती है । 2000 के उक्त अधिनियम के उपबंधों के कारण, किशोर को प्रदान की गई संरक्षा को केवल विस्तारित किया गया है किन्तु ऐसा विस्तार आत्यंतिक नहीं है बल्कि केवल सीमित प्रकृति का है । यह केवल उस दशा में लागू होगा जब धारा 20 या धारा 64 में यथा अंतर्विष्ट तत्संबंधी पूर्व शर्तों को पूरा कर दिया जाता है । उक्त उपबंधों में बार बार 'किशोर' या 'अपचारी किशोर' शब्दों के प्रति विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश किया गया है । अधिनियम का उद्देश्य भी यही प्रतीत होता है और संसद् के सही आशय को अभिनिश्चित करने के लिए प्रयोजनात्मक अर्थान्वयन के नियम को अवश्य ही अपनाया जाना चाहिए । यदि किसी बालक को किसी वयस्क की संगति में बनाए रखा जाता है तो उससे अधिनियम का प्रयोजन निष्फल हो जाएगा । इस प्रकार, 2000 के अधिनियम के आशय केवल उक्त अधिनियम के अर्थान्तर्गत किसी किशोर को संरक्षा प्रदान करने का है न कि किसी वयस्क को संरक्षा प्रदान करने का । दूसरे शब्दों में, भले ही यह अधिनियम ऐसे किसी व्यक्ति को लागू होगा जो अभी भी ऐसा किशोर है जो 18 वर्ष की आयु का नहीं हुआ है किन्तु यह ऐसे किसी व्यक्ति को लागू नहीं होगा जो उसके (अधिनियम के) प्रवृत्त होने की तारीख को 18 वर्ष का हो गया है या जो अपराध के किए जाने की तारीख को 18 वर्ष का नहीं हुआ था किन्तु उसके बाद अब किशोर नहीं रहा है ।

96. किसी कानून को भूतलक्षी प्रभाव देने पर रोक का प्रश्न केवल तब उद्भूत होता है जब उसके द्वारा किसी व्यक्ति के निहित अधिकारों को छीना जाना जाता है । अधिनियम की धारा 20 के कारण व्यक्ति के किसी भी निहित अधिकार को छीना नहीं गया है, बल्कि उसके द्वारा किशोर के लिए केवल अतिरिक्त संरक्षा का उपबंध किया गया है ।

97. **रत्तन लाल** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :–

> "...........संविधान के अनुच्छेद 20 के अधीन किसी भी व्यक्ति को ऐसे किसी अपराध के लिए उस कार्य के, जिसे अपराध के रूप में आरोपित किया गया हो, किए जाने के समय प्रवृत्त किसी विधि का अतिक्रमण किए जाने के संबंध में ही दोषसिद्ध किया जाएगा अन्यथा नहीं और न ही उस पर ऐसी किसी शास्ति से, जो अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती हो, अधिक शास्ति अधिरोपित की जाएगी । किन्तु ऐसी भूतलक्षी प्रभाव वाली विधि, जो केवल किसी दांडिक विधि की कठोरता को नरम बनाती हो अर्थात् कम करती हो, उक्त प्रतिषेध के अंतर्गत नहीं

[1] (2004) 5 एस. सी. सी. 385.

[2] [1964] 7 एस. सी. आर. 676.

आती । यदि किसी विशिष्ट विधि द्वारा इस आशय का कोई उपबंध किया जाता है, भले ही वह भूतलक्षी रूप से प्रवर्तन में हो, तो वह विधिमान्य होगा । यह प्रश्न कि क्या किसी ऐसी विधि का भूतलक्षी प्रभाव है और यदि है तो वह किसी सीमा तक है, किसी विशिष्ट कानून का अर्थान्वयन के सुस्थापित नियमों को ध्यान में रखते हुए निर्वचन किए जाने पर निर्भर करता है.........।"

न्या. सुब्बाराव. ने (जैसे कि माननीय न्यायमूर्ति उस समय थे) मैक्सवैल द्वारा रचित इंटरप्रिटेशन आफ स्टेट्यूट्स के प्रति निर्देश करते हुए यह राय व्यक्त की कि :–

"........यह ऐसा मामला नहीं है जहां कि किसी कार्य को, जो अधिनियम के पूर्व अपराध नहीं था, अधिनियम के अधीन अपराध बना दिया गया है; और न ही यह ऐसा मामला है जहां कि अधिनियम के अधीन जो दंड अधिरोपित किया गया है वह अधिनियम के पूर्व किसी अपराध के लिए दिए जाने वाले दंड से अधिक है । यह एक ऐसा दृष्टांत है जहां कि न तो अपराध के घटकों के साथ और न ही दंड की सीमा के साथ छेड़छाड़ की गई है बल्कि अभियुक्त का न्यायालय के किसी अभिकरण के माध्यम से सुधार करने में सहायता के लिए एक उपबंध किया गया है । तो भी कानून ऐसे किसी अपराध को प्रभावित करता है जो प्रश्नगत क्षेत्र में उसको विस्तारित करने से पूर्व किया गया था । अतः, यह भूतलक्षी प्रभाव वाली विधि है और इसका भूतलक्षी प्रभाव होता है । ऐसे किसी उपबंध की व्याप्ति पर विचार करते हुए हमें सुसंगत धारा के उपबंधों से कोई छेड़छाड़ किए बिना आधुनिक न्यायिक विचारधारा द्वारा प्रतिपादित फायदाप्रद अर्थान्वयन के नियम को ही अपना चाहिए.........।"

98. इस न्यायालय द्वारा **बशीर** उर्फ **एन. पी. बशीर** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में यह और अभिनिर्धारित किया गया कि :–

"यदि अधिनियम में अभियुक्त के लिए अहितप्रद (नुकसानदायक) कोई उपबंध अंतर्विष्ट है तो निस्संदेह यह अनुच्छेद 20(1) में अंतर्विष्ट भूतलक्षी प्रभाव वाले विधान के विरुद्ध नियम के विपरीत अर्थात् उल्लंघन में होगा । तथापि, हमारा यह निष्कर्ष है कि संशोधन (कम से कम वे जो दंडादिष्ट करने के ढांचे को युक्तिसंगत बनाने वाले हों) अभियुक्त के लिए अधिक हितप्रद हैं और विधि की कठोरता को कम करने की कोटि में आते हैं । परिणामतः, उनका भूतलक्षी प्रभाव होने के बावजूद भी उन्हें उन मामलों में लागू किया जाना चाहिए जो न्यायालय में लंबित पड़े हुए हैं और यहां तक कि उन मामलों में भी लागू किए जाने चाहिए जिनमें कि उस तारीख को, जिसको कि संशोधन अधिनियम प्रवृत्त होता है, अन्वेषण की कार्रवाई लंबित पड़ी हुई है । इस प्रकार उन्हें लागू किए जाने से संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन नहीं होगा ।"

99. यूनाइटेड किंग्डम के ह्यूमन राइट्स ऐक्ट, 1998 (मानव अधिकार अधिनियम, 1998) की धारा 6(1) और धारा 8 में भी मामलों का शीघ्र निपटारा किए जाने का उपबंध है । इस अपेक्षा को अर्थात् यह कि किसी दांडिक आरोप (वाले मामले) की सुनवाई युक्तियुक्त समय के भीतर की जाए, पूरा न करने के आशय का प्रश्न हाल ही में **अटर्नी जनरल के निर्देश (2001 का निर्देश सं. 2)**[2] में हाउस आफ लार्ड्स के समक्ष विचारार्थ आया था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि युक्तियुक्त समय की गारंटी के भंग के बारे में उपचार प्रत्येक मामले में अंतर्वलित तथ्य पर निर्भर करेगा । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि ऐसा अधिकार अभियुक्त को प्राप्त है, यह मत व्यक्त किया गया था कि :–

"जैसाकि मैंने कहा यह तर्कणा युक्तियुक्त समय के भीतर की बाध्यता के प्रवर्गीकरण तथा सुनवाई या अवधारण की उस विशिष्टताओं को जो 'ऋजु', 'खुली', 'स्वतंत्र', 'निष्पक्ष' और

[1] (2004) 3 एस. सी. सी. 609.

[2] (2004) 2 ए. सी. 72 (एच. एल.).

'विधि द्वारा स्थापित अधिकरण' की अपेक्षाओं के प्रति निर्देश किए जाने पर निर्भर करती है । यह प्रवर्गीकरण, जिसका मैंने सुझाव दिया है, मूलत: गलत है । युक्तियुक्त समय के भीतर की बाध्यता का कार्य संपादन की गुणता से संबंध है न कि सेवा या वस्तु के – यहां सुनवाई या अवधारण – के लक्षणों से जिनका कि बाध्यताधीन व्यक्ति द्वारा उपबंध किया जाना चाहिए । इन सबसे अतिकृत्रिमता ध्वनित होती है किन्तु इसे भाषा के सामान्य प्रयोग और बाध्यता की विधि के मूलभूत सिद्धांतों के प्रति निर्देश करते हुए दोनों रूप में आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है ।"

100. भारत में (मामलों का) शीघ्र निपटारा किए जाने का ऐसा अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में अंतर्विष्ट है, जिनकी सुसंगतता को अधिनियम के निर्वचन के प्रयोजन के लिए कम नहीं किया जा सकता ।

101. **जिले सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति श्री लाहोटी ने यह राय व्यक्त की कि भूतलक्षिता के विरुद्ध नियम को ऐसे विधानों के प्रति लागू नहीं किया जा सकता जो कि स्पष्टीकारक और घोषणात्मक प्रकृति के हों [**आर. (अटले के आवेदन पर)** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार दि होम डिपार्टमेंट**[2] वाला मामला भी देखिए] ।

102. **दयाल सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य**[3] वाले मामले भी इस न्यायालय द्वारा **रत्तन लाल** वाले (उपर्युक्त) मामले के प्रति निर्देश करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि :–

"11. इस विनिश्चय में उस सिद्धांत का अनुमोदन किया गया है कि भूतलक्षी प्रभाव वाली विधि जो केवल दांडिक विधि की कठोरता को कम करती है, भले ही वह भूतलक्षी रूप से प्रवर्तन में हो, विधिमान्य होगी । न्यायालय ने इस सिद्धांत को प्रतिपादित करने के पश्चात् अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 11 का निर्वचन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उपबंध का सही निर्वचन करने पर उच्च न्यायालय को अपील के प्रक्रम पर शक्ति का प्रयोग करने की अधिकारिता प्राप्त थी और वह शक्ति उस मामले तक सीमित नहीं थी जहां कि विचारण न्यायालय उस आदेश को पारित कर सकता था । इस धारा की वाक्यरचना इतनी व्यापक थी जो कि अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय को उसके समक्ष मामला आने पर ऐसा आदेश करने के लिए सशक्त बनाती है । अत:, हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि **रत्तन लाल** वाले मामले में इस सुस्थापित सिद्धांत से विचलन किया गया है कि किसी को भी ऐसे किसी अपराध के लिए उस कार्य के, जिसे अपराध के रूप में आरोपित किया गया है, किए जाने के समय प्रवृत्त किसी विधि का अतिक्रमण किए जाने के संबंध में ही दोषसिद्ध किया जाएगा, अन्यथा नहीं और न ही उस पर ऐसी किसी शास्ति से, जो अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती हो, अधिक शास्ति अधिरोपित की जाएगी । इस न्यायालय द्वारा केवल यह सिद्धांत अधिकथित किया गया कि ऐसी भूतलक्षी प्रभाव वाली विधि, जो केवल दांडिक विधि की कठोरता को कम करती है, उक्त प्रतिषेध के अंतर्गत नहीं आती और यदि किसी विशिष्ट विधि द्वारा उस आशय का कोई उपबंध किया जाता है, भले ही भूतलक्षी रूप से प्रवर्तन में हो, तो वह विधिमान्य होगा ....।"

103. किसी कानून का निर्वचन उसके पाठ और संदर्भ पर तथा उद्देश्य पर, जिससे कि उसे बनाया गया था, निर्भर करता है ।

104. इसके अलावा, 2000 के अधिनियम का ऊपर वर्णित उपबंध उपचारात्मक कानून है । (जी. पी.

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 1 = (2004) 8 जजमेंट टुडे एस. सी. 589.

[2] (2004) 4 आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 1.

[3] (2004) 5 एस. सी. सी. 721 = (2004) सप्ली. 1 जजमेंट टुडे एस. सी. 37.

सिंह द्वारा रचित प्रिंसिपल्स आफ स्टेट्यूटरी इंटरप्रिटेशन, नवां संस्करण, 2007, पृष्ठ 733 पर की गई विवेचना देखिए ।) अतः, इनका उदारतापूर्वक निर्वचन किया जाना अपेक्षित है ।

105. किसी उपचारात्मक कानून को किसी लंबित कार्यवाही में लागू किए जाने का अर्थ यह नहीं है कि उसके द्वारा उसे भूतलक्षी प्रभाव दिया जा रहा है और पूर्व प्रभावी रूप से प्रवर्तन में लाया जा रहा है ।

106. हमारा कहने का आशय यह नहीं है कि इसका कोई और मत संभव नहीं है । किन्तु ऐसे प्रकृति के किसी मामले में जहां कि अंतरराष्ट्रीय संधियों के अनुसरण में या उनके अग्रसरण में तथा उस अनुभव को देखते हुए, जो कि 1986 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् संसद् को प्राप्त हुआ, अतिरिक्त संरक्षा प्रदान की गई हो, हमारा यह विचार है कि इसका इस रूप में परिशीलन किया जाना चाहिए कि किशोर को विस्तारित फायदा 2000 के अधिनियम के अधीन भी दिया जा सकता है । इसके अलावा, धारा 69 की उपधारा (2) में यह उपबंध है कि सभी कार्यवाहियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे नए अधिनियम के अधीन ग्रहण की गई हैं । इससे इस तथ्य का भी पता चलता है कि नया अधिनियम, ऊपरवर्णित सीमा तक, उस लंबित कार्यवाही को लागू होगा जो कि 1986 के अधिनियम के अधीन आरंभ की गई थी ।

आदर्श नियम :

107. तथापि, हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि आदर्श नियम अधिनियम के निबंधनों के अनुसार विरचित किए गए हैं जिससे कि उन सिद्धांतों को लागू किया जा सके कि विधिमान्य रूप से विरचित नियमों को अधिनियम के भागरूप माना जाना चाहिए । यह एक बात है कि विधिमान्य रूप से विरचित नियमों को अधिनियम के भागरूप माना जाना चाहिए जैसाकि **मुख्य वन संरक्षक (वन्य जीव) और अन्य** बनाम **निसार खान**[1] तथा **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है किन्तु उक्त सिद्धांत इस मामले के संबंध में लागू नहीं होता क्योंकि उक्त अधिनियम के निबंधनों के अनुसार केन्द्रीय सरकार को कोई नियम बनाने का प्राधिकार प्राप्त नहीं है । केन्द्रीय सरकार नियम बनाने की शक्ति न होने की दशा में कठिनाई दूर करने की शक्ति के बहुप्रयोजन खंड के प्रति-निर्देश नहीं कर सकती क्योंकि इस बात का कोई कथन नहीं किया गया है कि यदि अधिनियम के उपबंध को प्रभावी रूप देने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो किसी प्रकार के आदर्श नियम बनाना अनुज्ञेय होगा । केन्द्रीय सरकार एक कानून कृत्यकारी है । इसके कृत्य केवल अधिनियम की धारा 70 द्वारा सीमाबद्ध हैं । इसे कोई नियम बनाने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया है । नियम बनाने की ऐसी शक्ति केवल राज्य को सौंपी गई है । इस प्रकार, केन्द्रीय सरकार की इस मामले में कोई भूमिका नहीं है और न ही वह 'कठिनाइयों को दूर करने' की अपनी शक्ति का अवलंब लेकर ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकती है । नियम बनाने की शक्ति एक पृथक् शक्ति है जिसका कि कठिनाई को दूर करने की शक्ति से कोई सरोकार नहीं है । कठिनाई अथवा संदेह को दूर करने की शक्ति के कारण, केन्द्रीय सरकार को कोई विधायी शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है । हालांकि संदेह या कठिनाई को दूर करने की शक्ति एक कानूनी शक्ति है किन्तु यह विधायी शक्ति के सदृश नहीं है, अतः उसके द्वारा अधिनियम के उपबंधों में परिवर्तन (फेरफार) नहीं किया जा सकता [**मैसर्स जालान ट्रेडिंग कंपनी (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **मिल मजदूर सभा**[3] वाला मामला देखिए]।

108. अतः, अपचारी किशोर की आयु का अवधारण आदर्श नियम 62 के अनुसार नहीं किया जा सकता । किसी विवाद्यक का अवधारण करने में अन्य दस्तावेजों की अपेक्षा कतिपय दस्तावेजों पर विचार

---

[1] (2003) 4 एस. सी. सी. 595.

[2] (2004) 3 एस. सी. सी. 297.

[3] [1967] 1 एस. सी. आर. 15.

2005(2) eILR(PAT) SC 1

करना न्यायालय के लिए आज्ञापक बनाने संबंधी किसी विधि का उपबंध केवल विधि द्वारा ही किया जाना चाहिए । भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 को ध्यान में रखते हुए ऐसे किसी प्रश्न का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य का मूल्यांकन करने की न्यायालय की शक्ति को केवल विधिमान्य रूप से बनाई गई किसी विधि द्वारा ही छीना जा सकता है । केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यपालिक शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसा नहीं किया जा सकता [**भारत संघ** बनाम **नवीन जिंदल**[1] और **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **जोहरी मल**[2] वाले मामले देखिए] ।

109. **बिरदमल सिंघवी** बनाम **आनंद पुरोहित**[3] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि :—

"......किसी दस्तावेज को धारा 35 के अधीन ग्राह्य बनाने के लिए तीन शर्तों की पूर्ति की जानी चाहिए, प्रथमत: जिस प्रविष्टि का अवलंब लिया गया हो, वह किसी लोक का अन्य राजकीय पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख में की गई प्रविष्टि होनी चाहिए, द्वितीयत:, वह ऐसी प्रविष्टि होनी चाहिए, जिसमें विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य का कथन किया गया हो; और तृतीयत: वह किसी लोकसेवक द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में या विधि द्वारा विशेष रूप से व्यादिष्ट कर्तव्य पालन में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए । विद्यालय रजिस्टर में जन्म-तिथि के संबंध में की गई प्रविष्टि सुसंगत और अधिनियम की धारा 35 के अधीन ग्राह्य है, किंतु विद्यालय रजिस्टर में किसी व्यक्ति की आयु के बारे में की गई प्रविष्टि का, उस सामग्री के अभाव में, जिसके आधार पर आयु अभिलिखित की गई थी, उस व्यक्ति की आयु को साबित करने के लिए बहुत साक्ष्यिक महत्व नहीं है ।"

110. इस न्यायालय ने **सुशील कुमार** बनाम **राकेश कुमार**[4] वाले मामले में, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 36(2) के निबंधनों के अनुसार किसी अभ्यर्थी की आयु का अवधारण करने के संबंध में यह मत व्यक्त किया कि :—

"32. किसी निर्वचन अर्जी में किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण न केवल अभिलेख पर प्रस्तुत की गई तथ्य सामग्री के आधार पर किया जाना होता है बल्कि उससे संबंधित परिस्थितियों पर विचार करके भी किया जाना होता है । यद्यपि, निर्वाचन अर्जी में किए गए अभिकथनों को साबित करने का भार मूलत: निर्वाचन अर्जीदार पर होता है, तथापि उन तथ्यों को साबित करने का, जिसकी प्रत्यर्थी को विशेष जानकारी हो, भार साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के निबंधनों के अनुसार उस पर (प्रत्यर्थी पर) होता है । यह भी बिल्कुल साफ है कि जब दोनों पक्षकार साक्ष्य प्रस्तुत कर देते हैं तो सबूत के भार का प्रश्न सैद्धांतिक बन जाता है {भारत संघ **बनाम** सुगौली शुगर वर्क्स (प्राइवेट) लिमिटेड [(1976) 3 एस. सी. सी. 32] और काक्स एंड किंग्स (एजेन्ट्स) लिमिटेड **बनाम** कर्मकार [(1977) 2 एस. सी. सी. 705] वाले मामले देखिए} । इसके अलावा, किसी पक्षकार की ओर से किसी वाद को ग्रहण करना उस पर आबद्धकर होगा तथा किसी भी दशा में यह उपधारणा की जानी चाहिए कि उसके बारे में यह माना जाना चाहिए कि वह साबित हो गया है ।"

इस न्यायालय द्वारा उक्त मामले में अन्य बातों के साथ-साथ **बिरदमल सिंघवी** बनाम **आनंद पुरोहित**[3] वाले मामले में के विनिश्चय और अनेकों अन्य विनिश्चयों का अनुसरण किया गया ।

111. अत:, न्यायालय को इसमें के अपीलार्थी की आयु का अवधारण हमारे द्वारा ऊपरवर्णित इन

---

[1] (2004) 2 एस. सी. सी. 510.

[2] (2004) 4 एस. सी. सी. 714.

[3] [1989] 1 उम. नि. प. 943 = ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1796.

[4] (2003) 8 एस. सी. सी. 673.

निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि किशोर की आयु की गणना करने के लिए सुसंगत तारीख घटना के घटित होने की तारीख होगी न कि वह तारीख जिस तारीख को उसे बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है ।

112. ऊपरवर्णित विवेचना का निष्कर्ष यह है कि :–

(i) 1986 के अधिनियम के निबंधनों के अनुसार अपराधी की आयु की गणना उस तारीख से की जानी चाहिए, जिस तारीख को अभिकथित अपराध किया गया था ;

(ii) 1986 के अधिनियम के अधीन लंबित मामलों में 2000 का अधिनियम सीमित रूप से लागू होगा ;

(iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा विरचित आदर्श नियमों को, जिनका कोई विधिक बल नहीं है, प्रभावी रूप नहीं दिया जा सकता ;

(iv) अतः, न्यायालय किशोर की आयु का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के उपबंधों को विचार में लेते हुए साक्ष्य के साधारण नियमों को लागू करने का हकदार होगा ।

113. ऊपरवर्णित के अधीन रहते हुए मैं. न्या. बंधु श्री सेमा द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सादर अपनी सहमति व्यक्त करता हूं ।

तदनुसार अपील का निपटारा किया गया ।